एम. एन. राय

राष्ट्रीय जीवनचरित

एम. एन. राय

वी. बी. कर्णिक

अनुवाद
माधुरी पाल

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ISBN 81-237-2487-X

पहला संस्करण : 1987
चौथी आवृत्ति : 1998(शक 1920)

M. N. Roy (*Hindi*)

रु. 30.00

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क,
नयी दिल्ली - 110 016 द्वारा प्रकाशित

विषय सूची

परिचय

राय का अद्वितीय व्यक्तित्व था। उन्होंने इस देश में वर्तमान सदी के प्रथम दो दशकों में हुए सशस्त्र संघर्षों में भाग लिया। इसके बाद के वर्षों में उन्होंने मैक्सिको व चीन में हुए क्रांतिकारी संघर्षों में भाग लिया। उन्हें विश्व के महान क्रांतिकारी, लेनिन, ट्राटस्की तथा स्टालिन जैसी हस्तियों के साथ काम करने का दुर्लभ सौभाग्य प्राप्त हुआ था। राष्ट्रीय स्तर पर उनके किसी भी सहयोगी का इतना अभिभूत करने वाला इतिहास नहीं था। महात्मा गांधी के अतिरिक्त सभी ने भारत में ही काम किया था। नेहरू के अतिरिक्त किसी के भी अंतर्राष्ट्रीय संपर्क उतने न थे जितने एम.एन.राय के दूसरे देशों में हुए क्रांतिकारी आंदोलन के बारे में थे।

फिर भी जब राय ने खुलेआम दिसंबर,1936 के बाद से राष्ट्रीय आंदोलन में काम करना शुरू कर किया तो उन्हें न तो वह प्रसिद्धि व सफलता मिली जो मिलनी चाहिए थी और न ही वे अपने व्यक्तित्व की स्थायी छाप छोड़ सके। चार वर्षों से कम समय में ही उन्हें इंडियन नेशनल कांग्रेस, जो राष्ट्रीय आंदोलन का मुख्य केंद्र थी, छोड़नी पड़ी और आम जनता की मांगों व अभिलाषाओं को व्यक्त करने तथा उनके लिए लड़ने के लिए उन्होंने एक नई संस्था बनानी आरंभ की। यह सब दूसरा विश्वयुद्ध छिड़ने पर हुआ, जब राय ने खुलेआम व दृढ़ता से युद्ध का बिना शर्त समर्थन किया। उस समय कांग्रेस दुविधा में पड़ी रही और अंत में उसने "भारत छोड़ो" आंदोलन के रूप में युद्ध का विरोध किया। कांग्रेस की नीति सबको पसंद थी क्योंकि इससे लोगों की ब्रिटिश विरोधी भावनाएं अभिव्यक्त हो रही थीं। किंतु राय के विचार स्पष्ट थे और वे देख सकते थे कि कैसे हिटलर व उसके मित्र देशों की जीत से संसार के सभी लोगों की आजादी छिन जाएगी जबकि ग्रेट ब्रिटेन व दूसरी तानाशाही विरोधी शक्तियों की जीत से साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो जाएंगे और भारत तथा अन्य उपनिवेशों को आजादी मिल जाएगी। उनकी भविष्यवाणी सच निकलती, लेकिन वह एक असम्मानित भविष्यवक्ता ही रहे।

राय के कांग्रेस व विशेषकर इसके गांधीवादी नेतृत्व से मतभेद दूसरे विश्वयुद्ध से आरंभ नहीं हुए थे। वे बहुत पुराने थे जो 1920 के असहयोग आंदोलन से आरंभ हुए तथा

उस समय से थे, जब राय ने भारत में साम्यवादी पार्टी बनाने का कठिन काम शुरू किया।

जनता को गतिशील बनाने वाले के रूप में राय गांधी का बहुत आदर करते थे परंतु राय के विचार से गांधीवादी कार्यक्रम नकारात्मक व अहानिकर था तथा उनका सामाजिक दृष्टिकोण प्रतिक्रियावादी था। उनका विश्वास था कि ऐसे कार्यक्रम व दृष्टिकोण से गांधीवादी नेतृत्व कभी भी लोगों को उस राष्ट्रीय क्रांति की ओर नहीं ले जा सकेगा जिसमें राजनैतिक स्वतंत्रता के साथ साथ आर्थिक व सामाजिक स्वतंत्रता भी शामिल थी। राय का, जब वे विदेश में थे तथा जब 1936 में वे कांग्रेस में शामिल हुए, यह निरंतर प्रयास था कि उस नेतृत्व की जगह एक नया नेतृत्व लाया जाए जिसका सर्वतोन्मुखी राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक व दार्शनिक क्रांति का कार्यक्रम हो। उन्होंने गांधी का प्रत्यक्ष विरोध किया। ऐसी स्थिति में विशाल बौद्धिक शक्ति, संगठन क्षमता, सहिष्णुता तथा त्याग आदि गुणों के बावजूद भी उन्हें असफल होना ही था।

राय ने गांधी का व्यक्ति के रूप में नहीं,वरन उस विचारधारा और जीवन पद्धति के रूप में विरोध किया जो उनके अनुसार लोगों के सच्चे हितों के विरुद्ध थी। राय का दृष्टिकोण पूर्णतया आधुनिक, तर्कसंगत तथा वैज्ञानिक था, जबकि गांधी उनके लिए मध्ययुगीन आध्यात्मिक दृष्टिकोण के व्यक्ति तथा आधुनिक सभ्यता के विरोधी व निहित स्वार्थों के रक्षक थे। राय सदा प्रचलित पूर्वाग्रहों तथा हानिकारक सामाजिक प्रथाओं के विरुद्ध लड़ने को तैयार थे। वह राजनीति व सामाजिक मामलों में धर्म के हस्तक्षेप के विरुद्ध थे। वह लोगों के विचारों को बदलना चाहते थे, ताकि वे अधिक आलोचनात्मक तथा स्वावलंबी बन सकें, उन्हें वीरपूजा से नफरत थी। इन्हीं सब बातों के कारण वह लोगों में तथा गांधी जी के अनुयायियों में लोकप्रियता न पा सके और उनके राजनैतिक नेता के रूप में सफल होने की संभावनाएं बहुत सीमित हो गईं। बाद में जब वह मूलतया मानवतावादी बन गए, उनकी व गांधीवादी विचारधारा में कुछ मिलती जुलती बातें थीं परंतु तब तक गांधी जी मर चुके थे और वह स्वयं दैनंदिन राजनीति से संन्यास ले चुके थे।

राय ने अपना राजनैतिक जीवन युद्धप्रिय राष्ट्रवादी के रूप में आरंभ किया जो बम, पिस्तौल व हथियारबंद विद्रोह के सिद्धांत में विश्वास रखते थे। उस विचारधारा की अर्थहीनता ने उन्हें समाजवादी बनाया और फिर साम्यवादी। साम्यवादी आंदोलन में वे बहुत ऊंचे स्थानों पर पहुंचे। उस स्थिति में होने से उनके पास यथेष्ट सत्ता व सम्मान था। कोई भी यह सब अपने पास रखने के लोभ को संवरण न कर पाता। परंतु ऐसे किसी भी लालच ने राय को यह सब छोड़ने से नहीं रोका। जब उन्होंने देखा कि कम्युनिस्ट इंटरनेशनल जिसने सारे संसार में साम्यवादी आंदोलन का मार्ग प्रदर्शित किया था, गलत रास्ते पर चल रहा है तब वे कम्युनिस्ट इंटरनेशनल व उसके नेता स्टालिन के विरुद्ध खड़े हो गए। इन्हें संस्था से निकाल

बाहर किया गया और राजनैतिक रूप से उन्हें मिटाने के लिए सारे प्रचार साधनों का इस्तेमाल किया गया। उन्हें 'देशद्रोही', 'क्रांति-विरोधी', 'साम्राज्यवाद का पिट्ठू' और न जाने क्या क्या कहा गया। यह जहरीला प्रचार उनके मरने तक जहां भी वह गए उनका पीछा करता रहा।

राय 1930 के अंत में पंद्रह साल बाहर रहने के बाद लौटे। अपने कुछ सच्चे सहयोगियों को छोड़कर वह अकेले थे और उनके विरुद्ध पूरे ब्रिटिश साम्राज्य की ताकत थी। कुछ ही महीनों में उन्हें साम्यवादी आंदोलन को राष्ट्र आंदोलन के साथ अभिन्न रूप में जोड़ने की कोशिशों की कीमत जेल जाकर चुकानी पड़ी। जैसे ही वह स्वतंत्र हुए फिर राष्ट्रीय आंदोलन में कूद पड़े। पर इस आंदोलन में उनका रास्ता सरल न था। उनको वामपंथी व दक्षिणपंथी दोनों के विरोध का सामना करना पड़ा और फिर दूसरा विश्वयुद्ध बीच में आ गया जिससे राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय विचारों में आश्चर्यजनक परिवर्तन हुए।

लड़ाई के दौरान तथा लड़ाई के बाद के वर्षों में जो घटनाएं घटित हुईं उससे राय के सामने साम्यवाद व मार्क्सवाद की दुर्बलताएं स्पष्ट हो गईं और राय को उनसे अलग सोचने पर मजबूर कर दिया। वे राष्ट्रवाद से साम्यवाद तथा साम्यवाद से आमूल मानववाद तक कि यात्रा पूरी करते हुए बुनियादी तौर पर मानवतावादी बन गए। यह 'स्वतंत्रता की खोज' के लिए की गई यात्रा थी। ये सारी घटनाएं उस समय की हैं जब वह मात्र विद्यार्थी थे और जिसने उन्हें क्रांति आंदोलन में घसीटा था। इसकी खोज उन्हें सारे संसार में ले गई। चीन, जापान, अमेरिका, मैक्सिको, रूस व यूरोप के दूसरे देश तथा वापस भारत। इस भटकन के दौरान वह कई ख्याति प्राप्त लोगों से मिले और विभिन्न विचारधाराओं एवं आधुनिक विज्ञान जैसे भौतिकी, रसायन, समाजशास्त्र व मनोविज्ञान का उन्होंने अध्ययन किया। इन सबके अध्ययन के बाद उन्होंने अपना एक दर्शन विकसित किया। वह था रेडिकल ह्यूमनिज्म का दर्शन।

यह बहुत कम होता है कि एक राजनीतिक सक्रिय कार्यकर्ता तथा चिंतक हो। वे तमाम ग्रंथ जो वे छोड़ गए हैं, इस सत्य के जीते-जागते प्रमाण हैं। उनकी पुस्तकें विविध विषयों को लेकर लिखी गई हैं। इनके अंतर्गत राजनीति से अर्थशास्त्र तक तथा दर्शन से प्राकृतिक विज्ञान तक के विषय आते हैं।

ऐसे अद्वितीय व्यक्ति की जीवनी अवश्य ही अत्यंत आकर्षक होगी। आगे के पृष्ठों में उस पर कुछ प्रकाश डालने की कोशिश की गई है।

1

उग्र राष्ट्रवादी

मानवेंद्र नाथ या एम.एन जिनकी जीवनी यहां दी जा रही है उनका असली नाम नहीं था। यह नाम उन्होंने वर्षों बाद अपनाया था जब उनके जीवन का एक अध्याय समाप्त हो चुका था और एक नया अध्याय आरंभ होने वाला था। उनका असली नाम नरेंद्रनाथ भट्टाचार्य था और अपने जीवन के प्रारंभिक वर्षों में राष्ट्रवादी संघर्ष के काल में वह इसी नाम से जाने जाते थे। उन दिनों नरेंद्रनाथ या नरेन (जिन नामों से वह जाने जाते थे) का जन्म 1887 में अरबेलिया नामक गांव में हुआ था जो कलकत्ता के निकट ही जिला परगना में स्थित है।[1] उनका जन्म एक पुरोहित परिवार में हुआ। उनके पिता दक्षिण-पश्चिमी बंगाल के जिला मिदनापुर के सेपुट गांव में स्थित सेपुतेश्वरी देवी के मंदिर में मुख्य पुजारी थे। प्रमुख पुजारी का पद परिवार में परंपरागत था। दीनबंधु ने सेपुट गांव छोड़ दिया और अरबेलिया गांव में संस्कृत अध्यापक के रूप में कार्य करने लगे। नरेंद्रनाथ दीनबंधु की चौथी संतान थे और उनकी दूसरी पत्नी की दूसरी। पहली पत्नी की मृत्यु के बाद दीनबंधु ने दूसरा विवाह कर लिया था। बाद में दीनबंधु चिंगरीपोटा आ गए, जो कलकत्ते से बारह मील दक्षिण में है। यहां उन्होंने कुछ संपत्ति भी अर्जित की तथा जीवन पर्यंत यहीं रहते रहे। 1905 में उनकी मृत्यु हो गई।

नरेंद्रनाथ का लालन-पालन एवं उनकी शिक्षा-दीक्षा चिंगरीपोटा में हुई तथा यही स्थान उग्र राष्ट्रवादी के रूप में उनकी पहली कार्यवाही का घटनास्थल बना। वे किस स्कूल में जाते थे तथा शिक्षा में उनकी प्रगति कैसी थी, इस बारे में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। संभवतया वे एंट्रेंस परीक्षा पास करके नेशनल कालेज कलकत्ता में भरती हुए। परंतु यही उनकी औपचारिक शिक्षा का अंत था।

नरेंद्रनाथ का गांव, चिंगरीपोटा, कोदालिया, हरनावी एवं राजपुर गांवों से लगा हुआ गांव है। इन ग्रामवासियों ने मिलकर एक गुट बनाया जिसने आधुनिक बंगाल के सामाजिक

एवं राजनैतिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। समरेन राय के शब्दों में, "यहां उन्नीसवीं शताब्दी में बंगाल के कई धार्मिक एवं सामाजिक सुधारकों ने जन्म लिया।" इनमें विशेष उल्लेखनीय है राजनारायण बोस (अरविंद और बारिन के मामा) 'सोमप्रकाश' के प्रसिद्ध संपादक एवं पंडित शिवनाथ शास्त्री के सहयोगी द्वारकानाथ विद्याभूषण। उन्नीसवीं शताब्दी के महान विद्वान शिवनाथ शास्त्री ने नया धर्म ब्रह्मवाद अपनाने के लिए पवित्र जनेऊ तोड़कर फेंका था। वे रिश्ते में नरेंद्र की मां के चाचा थे और परिवार के युवा सदस्यों पर उनका प्रभाव स्पष्ट था। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम चरण में राजनारायण बोस एवं शिवनाथ शास्त्री ने एक गुप्त क्रांतिकारी संस्था की स्थापना करने का प्रथम प्रयास किया एवं नवगोपाल मिश्रा को 'जातीय मेला' की संस्थापना करने की प्रेरणा भी मिली।[2] यहीं नरेंद्रनाथ हरिकुमार चक्रवर्ती के संपर्क में आए जो उनके आजीवन मित्र बने रहे तथा उनके सामाजिक एवं राजनैतिक क्रियाकलापों में घनिष्ठ सहयोगी भी रहे।

अपने प्रारंभिक जीवन में नरेंद्रनाथ ने निश्चय ही अपने बड़े भाई एवं औरों से संस्कृत का काफी ज्ञान प्राप्त किया होगा। उन्होंने अवश्य ही संस्कृत में दर्शनशास्त्र एवं तर्कशास्त्र पर कई निबंध पढ़े होंगे। बाद के वर्षों में अक्सर वे उन निबंधों से उद्धृत किया करते थे। मध्युगीन बंगाल के प्रसिद्ध तर्कशास्त्री रघुनंदन को भी वे अपने पूर्वजों में शामिल करते थे।

उन दिनों जब नरेंद्रनाथ युवावस्था की दहलीज पर थे तभी बंगाल उत्तेजना के दौर से गुजर रहा था। यह असंतोष अपनी पराकाष्ठा पर उन दिनों पहुंचा जब 1905 में हुए बंगाल विभाजन के विरुद्ध आंदोलन चल रहा था, यद्यपि इसके संकेत पहले से ही मिल चुके थे। वास्तव में बंगाल विभाजन ब्रिटिश सरकार का असंतोष दबाने का एक भौंडा जवाब था। सरकार की आशा थी कि इस उपद्रवी सूबे के विभाजन द्वारा ही असंतोष दबाया जा सकेगा। लेकिन परिणाम इसके बिलकुल विपरीत था। उत्तेजना और भी अधिक तीव्र एवं व्यापक होती गई और अंततः सरकार को विभाजन रद्द कर देना पड़ा। स्वतंत्रता की जागृत इच्छा को दबाया नहीं जा सकता था। यह आकांक्षा बढ़ती गई तथा युवक-वर्ग को सत्ता पर एक के बाद एक प्रहार करने के लिए प्रेरित करती रही।

उत्तेजना अब देशव्यापी थी। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में यह आरंभ हुई और जिन कारणों से इसका जन्म हुआ वे थे—आवेदनों, प्रतिवेदनों एवं वैधानिक आंदोलनों को राजनीति के नगण्य परिणामों से निराशा, जन-साधारण की बढ़ती हुई गरीबी, शिक्षित युवकों की बेरोजगारी तथा राष्ट्र एवं धर्म में आस्था का पुनर्जागरण। यह अंतिम तत्व जिसने उन दिनों धार्मिक राष्ट्रवादी का रूप धारण कर लिया था एक ऐसी प्रभावकारी शक्ति बन गया जिसने बड़ी संख्या में साहसी युवकों को मातृभूमि को स्वतंत्रता दिलाने के लिए क्रांतिकारी गतिविधियां अपनाने को प्रेरित किया।

बंकिमचंद्र चटर्जी के प्रसिद्ध उपन्यास 'आनंद मठ' में प्रतिपादित मातृभूमि के भाव इन युवकों के मानसपटल पर पूरी तरह छा गए और 'वंदे मातरम' का नारा युद्ध की उद्घोषणा बन गया। ये सभी युवक उपन्यास से प्रेरित होकर भारत मां को दासता की बेड़ियों से मुक्त कराने के लिए संन्यासी की तरह स्वयं को समर्पित कर देना चाहते थे। युवा वर्ग के विचारों एवं कार्यों पर एक अन्य महत्वपूर्ण प्रभाव विवेकानंद का पड़ा जो संयुक्त राज्य अमेरिका से लौटने के बाद आध्यात्मिक हिंदूवाद और पुनर्जागरण तथा धार्मिक राष्ट्रवाद के शक्तिशाली प्रवक्ता बन चुके थे।

उग्र राष्ट्रवाद के वातावरण से जो बंगाल सूबे में एवं उनके गांव में तथा आसपास के गांवों पर छाया हुआ था प्रभावित होकर नरेंद्रनाथ स्वाभाविक रूप से क्रांतिकारी आंदोलन की ओर आकर्षित हो गए। यह कहना कठिन है कि वे वास्तव में कब इसमें शामिल हुए, किंतु निश्चित है यह 1904 का ही कोई समय रहा होगा। उस समय के उनके एक घनिष्ठ सहयोगी जदुगोपाल मुकर्जी ने समरेन राय की पुस्तक ''द रेस्टलेस ब्राह्मिन'' के प्राक्कथन में लिखा है, ''मैं नरेंद्र भट्टाचार्य से सर्वप्रथम लगभग 1905 या 1906 में अनुशीलन समिति में मिला था। 49, कार्नवालिस स्ट्रीट में स्थित अनुशीलन समिति के दफ्तर में इसके कार्यकर्ताओं के ठहरने का प्रबंध था और नरेंद्र वहां आकर ठहरा करते थे। वह और हरिकुमार चक्रवर्ती समिति के एक साथ मेंबर बने।''[3] हरिकुमार चक्रवर्ती के अनुसार सन 1904 में तीनों मित्र, नरेंद्रनाथ, हरिकुमार एवं शैलेश्वर कलकत्ता जाकर अरविंद घोष के भाई बारिन घोष से मिले जो बाद में 'युगांतर' के संपादक बने और तीनों ने क्रांतिकारी आंदोलन में शामिल होने का निश्चय किया। लगभग एक वर्ष के बाद ही वे जदुगोपाल मुकर्जी से मिले होंगे।

नरेंद्र के जीवन के प्रारंभिक वर्षों के बारे में हरिकुमार मुकर्जी जो उनसे 1899 में पहली बार मिले थे और जो उनके निकट सहयोगी एवं आजीवन मित्र बने रहे, लिखते हैं —

''किशोर नरेंद्र साहसी थे। उन्हें दूर दूर तक चलना पसंद था। वे हमेशा फलों के बागों में भटकते रहते। दूर किसी चीज की तलाश में जो शायद उस पार ही मिलती हो और रातें वे श्मशान में प्रेतात्माओं की खोज में बिताते।''[4]

नरेंद्रनाथ उन दिनों बहुत बेचैन रहा करते थे। वे अपने पिता से संस्कृत की शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, बेलूर के रामकृष्ण आश्रम में जाया करते थे, शिवनारायण स्वामी से लाठी चलाना, योग, राष्ट्रवाद एवं परिमार्जित हिंदूवाद का ज्ञान प्रांप्त कर रहे थे। वे क्रांतिकारियों एवं उनके कार्यकलापों के बारे में जानकारी भी एकत्रित कर रहे थे।

आंदोलन में नरेंद्रनाथ के पदार्पण के बारे में उनके उन दिनों के एक सहयोगी लिखते हैं, ''नरेंद्र बिलकुल लड़के से, आयु मुश्किल से चौदह वर्ष की, लेकिन उसके बावजूद ओजस्वी एवं कर्मठ तथा क्रांतिपूर्ण उत्साह से भरपूर, तेजी से एक छोटे कमरे में घुसे, जहां

हम लोग अनौपचारिक ढंग से बंगाल की, अपनी तथा अन्य स्थानों की समस्याओं पर बातचीत कर रहे थे। इसके बाद विदेशी बेड़ियों से भारत को स्वतंत्र कराने के कार्य में पूरे समय काम करने के लिए उन्होंने अपने आप को अर्पित किया। उन्होंने शपथ लेकर घोषित किया कि वे असंभव से असंभव कार्य करने के लिए भी तैयार हैं, क्योंकि एक क्रांतिकारी के लिए कुछ भी असंभव नहीं है। शीघ्र ही वह इसमें शामिल हो गए और हमारे आंदोलन के लिए वह बहुत मूल्यवान सिद्ध हुए। उनमें ऐसे असाधारण गुण थे जो एक महान नेता में ही पाए जा सकते हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के उद्देश्य ने ही नरेंद्रनाथ को क्रांतिकारी आंदोलन की ओर उन्मुख किया। 1905 में नरेंद्रनाथ अपने दो मित्रों हरिकुमार एवं शैलेश्वर सहित विभाजन के विरुद्ध होने वाली उन बैठकों में जाते थे जो कलकत्ते में अक्सर हुआ करती थीं। एक बार तीनों मित्रों ने प्रसिद्ध राष्ट्रवादी नेता सुरेंद्रनाथ बैनर्जी को कोदालिया आमंत्रित किया और उनके लिए एक सभा का आयोजन किया। इस राजनैतिक कार्य के लिए उन तीनों मित्रों को तथा कुछ अन्य छात्रों को स्कूल से निष्कासित कर दिया गया, लेकिन बाद में यह दंड वापिस ले लिया गया और उन्हें एंट्रेंस परीक्षा में बैठने दिया गया। नरेंद्र एवं उनके मित्र भगवद्गीता, बंकिमचटर्जी का 'आनंद मठ', अरविंद घोष रचित 'भवानी मंदिर' तथा उस समय की अन्य क्रांतिकारी पुस्तकों को बड़े चाव से पड़ा करते थे, किंतु जिन रचनाओं ने उन्हें सबसे अधिक प्रभावित किया वे स्वामी विवेकानंद की पुस्तकें थीं।

इसके बाद नरेंद्र एवं उनके मित्र अनुशीलन समिति नामक संस्था में शामिल हो गए जिसकी स्थापना बंगाली युवकों के शारीरिक, मानसिक एवं नैतिक पुनरुत्थान के लिए 1902 में कलकत्ता में हुई। शीघ्र ही यह ऐसे गुप्त संगठन में परिवर्तित हो गई जो सारे बंगाल के क्रांतिकारी कार्यकलापों का केंद्र था। समय के साथ ऐसी ही अनेक समितियां अन्य शहरों में भी स्थापित की गईं, कुछ शाखाओं के रूप में और कुछ स्वतंत्र केंद्रों के रूप में। इन स्वतंत्र केंद्रों में सबसे प्रमुख ढाका की अनुशीलन समिति थी। ये समितियां संग्राम नीतियों में सदा एक-दूसरे से सहमत नहीं हो पाती थीं। इनमें आपसी ईर्ष्याभाव तथा एक-दूसरे के प्रति संदेह भी पाया जाता था, यद्यपि कुछ मौकों पर इन्होंने आपस में मिलकर सामान्य कार्यवाहियां भी आयोजित कीं। प्रत्येक समिति एक नेता के अधीन थी। इनमें प्रवेश के लिए बहुत कड़े नियम लागू किए गए और इनकी गतिविधियों की गोपनीयता बनाए रखने के लिए सख्त अनुशासन और प्रभावकारी उपाय अपनाए गए। सरकार और पुलिस शुरू से ही समिति को संदेह की दृष्टि से देखती थी। किंतु वे इनके विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं कर सकते थे क्योंकि जाहिर तौर पर इनके कार्य वैध थे। दूसरे, लोकजन जैसे सी.आर.दास एवं अन्य लोग भी इन समितियों से जुड़े हुए थे। 1908 तक उनके पास इस बात के काफी प्रमाण जुट चुके थे कि

समितियों का राजनैतिक डकैतियों एवं हत्याओं से संबंध है। परिणामस्वरूप कई छापे मारे गए और इन्हें गैर-कानूनी घोषित करते हुए इनके विरुद्ध कदम उठाया गया। कलकत्ता अनुशीलन समिति 1908 में गैर-कानूनी घोषित की गई। अगले वर्ष ढाका समिति की बारी आई और इन्हीं दोनों के साथ कई अन्य समितियां भी अवैध ठहरा दी गईं।

समितियों की नीति व अनुशासन के कारण नए सदस्यों को पहले समाज-सेवा तथा सहायता कार्य करना पड़ता था। नरेंद्र और हरिकुमार सहायता कार्य के लिए उड़ीसा भेजे गए। नरेंद्र को जैपुर के रूरियाहाट कैंप में रखा गया। उनका काम संतोषजनक था और कलकत्ता लौटने पर उन्हें अंतरंग दल में प्रवेश दे दिया गया। इस समय तक नरेंद्र अपना घर त्याग चुके थे और 49, कार्नवालिस स्ट्रीट में रह रहे थे, जहां अनुशीलन समिति का मुख्यालय था।

लगभग इसी समय वे बारिन घोष के निकट संपर्क में आए जिन्होंने बांग्ला दैनिक 'युगांतर' निकालना आरंभ कर दिया था। नरेंद्र इस दैनिक के प्रकाशन में बारिन घोष की सहायता करते रहे तथा इस पत्र के लिए उन्होंने शायद कुछ लेख भी लिखे। बाद में 'मायेर डाक' नामक एक छोटी पुस्तक लिखी। यह पुस्तक पुलिस के हाथों पड़ गई और उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया।

क्रांतिकारी आंदोलन में शामिल होने के कुछ समय बाद नरेंद्र को बंदूक चलाने तथा बम बनाने का काम सिखाया गया था। कारतूस और बम क्रांतिकारी के प्रमुख हथियार थे। इनका प्रयोग ब्रिटिश अफसरों को आतंकित करने, भारतीय देशद्रोहियों व स्वतंत्रता संग्राम की सेना से भागे हुए लोगों को दंड देने, लोगों में जागृति एवं उत्साह भरने तथा सशस्त्र विद्रोह एवं जन्मभूमि को स्वतंत्रता दिलाने के लिए किया जाता था।

लगभग इसी समय नरेंद्र यतींद्रनाथ मुकर्जी के संपर्क में आए। वे सरकारी नौकर थे और वित्त सचिव के कार्यालय में शार्टहैंड क्लर्क के रूप में काम करते थे। वे क्रांति आंदोलन से घनिष्ठ रूप से संबंधित थे। वे स्वभाव से स्नेही थे तथा उनका आकर्षक व्यक्तित्व था। युवा क्रांतिकारियों का एक बड़ा समूह उनके चारों ओर एकत्रित हो गया था। नरेंद्र ने उन्हीं को अपना मार्गदर्शक माना और बाद में कई क्रांतिकारी जोखिमपूर्ण कार्यों में साथ साथ काम किया।

नरेंद्र इस समय तक बारिन घोष के साथ मिलकर बम बनाने के कार्य में अच्छी तरह जुटे हुए थे। इस कार्य का केंद्र कलकत्ता की एक बस्ती मानिकटाला स्थित मुरारीपुर गार्डन था। इस केंद्र में बने बमों का प्रयोग कलकत्ते में कई स्थानों पर किया गया। खुदीराम बोस ने 30 अप्रैल,1908 में मुजफ्फरपुर में जिस बम का इस्तेमाल किया, वह भी इसी केंद्र का बना हुआ पाया गया था। केंद्र पर छापा पड़ा और वहां की तलाशी ली गई तथा जो सामान

बरामद हुआ उसके आधार पर एक षड्यंत्र का मुकदमा चलाया गया। अलीपुर षड्यंत्र केस में बारिन घोष तथा अरविंद घोष ही मुजरिम थे। नरेंद्र इस केस में नहीं फंस पाए परंतु पुलिस को उनपर भी संदेह था।

इससे एक वर्ष पहले, नरेंद्र ने सूबे में पहली राजनैतिक डकैती की। यह डकैती जतिन मुकर्जी के नेतृत्व में जो क्रांतिकारी कार्य हो रहे थे उनके खर्च के पैसे जुटाने के लिए की गई थी। डकैती चिंगरीपोटा रेलवे स्टेशन पर 6 दिसंबर 1907 को की गई।

स्टेशन मास्टर पर हमला किया गया और दफ्तर की सेफ से पैसे निकाल लिए गए। डकैती के बाद नरेंद्र फरार हो गए, किंतु कुछ ही दिनों बाद गिरफ्तार कर लिए गए। जिस समय उन्हें गिरफ्तार किया गया, बारिन घोष की पुस्तक 'वर्तमान नीति' तथा 'मायेर डाक' की हस्तलिपि उनसे बरामद हुई। उनको जमानत पर रिहा कर दिया गया। उनकी समाज सेवक के रूप में जो ख्याति थी, वह भी उनके रिहा होने का एक कारण था। कलकत्ता के सियालदाह पुलिस मजिस्ट्रेट को जो अर्जी जमानत के लिए भेजी गई थी उसमें नरेंद्र के वकील बाबू प्रोमोथनाथ मुकर्जी ने लिखा था, "यह युवक बंगाल टेक्नीकल इंस्टीट्यूट का विद्यार्थी था तथा इसने नेशनल कालेज से एंट्रेंस परीक्षा पास की और मेडल भी प्राप्त किया।" बाद में दो-तीन वर्षों के दौरान नरेंद्र ने कई राजनैतिक डकैतियां कीं किंतु उनके बारे में कोई विशिष्ट जानकारी नहीं है।

जिला चौबीस परगना के डायमंड हार्बर के निकट नेतरा में की गई डकैती के बारे में कुछ कुछ जानकारी उपलब्ध है। यह डकैती 25 अप्रैल 1909 को की गई। कहा जाता है कि 2,000 रुपए लेकर चलते समय नरेंद्र ने मकान मालिक से कहा, "हम अंग्रेजों को भगाने के लिए केवल पैसे उधार ले रहे हैं।" डकैती के कारण नरेंद्र को गिरफ्तार किया गया। उन्हें जमानत पर रिहा किया गया और उसके बाद ही वह फरार हो गए।

नेतरा डकैती का मुकदमा अलग से नहीं चलाया गया। इसको हावड़ा षड्यंत्र कांड में ही मिला दिया गया जिसका मुकदमा एक साल बाद चलाया गया।

फरार होने के बाद नरेंद्र अपना अधिकतर समय हावड़ा और शिवपुर में व्यतीत करते थे। अनुशीलन समिति पर अब प्रतिबंध लग चुका था। बारिन घोष तथा अन्य लोगों को लंबी अवधि के लिए जेल की सजा हो गई थी। इस कारण क्रांतिकारी आंदोलन काफी अव्यवस्थित हो चुका था। यह अब नरेंद्र के कंधों पर था कि बिखरे हुए लोगों को एकत्रित किया जाए, उनमें विश्वास जगाया जाए और उनके दलों को पुनः संगठित किया जाए। यह काम उन्होंने जतिन मुकर्जी के नेतृत्व में किया। वे एक ऐसे संगठनकर्ता थे जो जगह जगह घूमते थे और सक्रिय कार्यकर्ताओं से मिलते थे। जतिन मुकर्जी सबकी प्रेरणा के स्रोत एवं आंदोलन की धुरी थे। नरेंद्र के चिंगरीपोटा गुट ने इस कार्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जब नरेंद्र हावड़ा

में थे, वे विभिन्न दलों के साथ राजनीति संबंधी वाद-विवाद किया करते थे तथा अंग्रेजों को देश से निकाल बाहर करने के लिए छापामार युद्ध प्रणाली तथा अन्य तरीकों के बारे में योजनाएं बनाया करते थे।

समरेन राय ने जो जानकारी नरेंद्र के उन दिनों के सहयोगियों से बातचीत करके प्राप्त की है, उसके अनुसार नरेंद्र की राजनैतिक विचारधारा अन्य लोगों से कहीं अधिक प्रगतिशील थी। उनके विचार से चुने हुए कुछ व्यक्तियों की सरकार की अपेक्षा जनता की सरकार बननी चाहिए और क्रांति ही ऐसी सरकार बनाने का एकमात्र रास्ता था।

हावड़ा-शिवपुर कांस्प्रेसी केस 1910 के आरंभ में चलाया गया। अधिकतर अभियुक्त—नरेंद्र और जतिन मुकर्जी को मिलाकर कुल 46 थे—29 जनवरी को गिरफ्तार कर लिए गए। इसकी न्यायिक जांच 4 मार्च को शुरू हुई। मजिस्ट्रेट ने इनका मुकदमा 20 जुलाई को हाईकोर्ट के स्पेशल ट्रिब्यूनल के सुपुर्द कर दिया। अभियुक्तों पर यह आरोप लगाया गया था, "सन 1905 तथा 1910 के बीच इन लोगों ने आपस में तथा अन्य लोगों के साथ मिलकर यह षड्यंत्र किया कि भारत-सम्राट के विरुद्ध युद्ध किया जाए तथा भारत-सम्राट को उनके आधिपत्य से च्युत किया जाए और इस प्रकार इंडियन पेनल कोड की धारा 121-ए के अंतर्गत इन्होंने ऐसा अपराध किया है जो सजा के योग्य है।"[6] सरकारी वकील ने षड्यंत्र को तमाम उन राजनैतिक अपराधों से जोड़ने की चेष्टा की जिनमें दो पुलिस अफसरों तथा एक मुखबिर की हत्या, गोला-बारूद व शस्त्रों का जमाव, दसवीं जाट रेजिमेंट को विद्रोही बनाने का प्रयास एवं षड्यंत्र के लिए पैसा जुटाने के लिए भद्र लोगों द्वारा की गई डकैतियां शामिल थीं।"[7]

मुकदमे के तैंतीस लोग जो बरी हुए थे उन्हें एक वर्ष जेल में बिताना पड़ा। नरेंद्र भी उनमें थे। उन्हें करीब नौ महीने जेल में एकांत बंदी के रूप में रहना पड़ा और यह अनुभव उनका अति कटु अनुभव था। चिंगरीपोटा की डकैती के अतिरिक्त नरेंद्र 1908 और 1909 में हर वर्ष की गई छह छह डकैतियों में फंसे हुए थे। मुख्य न्यायाधीश का विचार था कि जो प्रमाण दिए गए उनसे नरेंद्र का डकैतियों में शामिल होना सिद्ध होता था।

जिस समय मुकदमा चल रहा था, जतिन मुकर्जी, नरेंद्र तथा अन्य लोगों ने अपने भावी कार्यक्रम की योजना जेल में बनाई। यह योजना थी, सशस्त्र विद्रोह करने की।

इस दिशा में पहला काम इस सशस्त्र विद्रोह की योजना को क्रांतिकारी दलों के समक्ष रखना तथा उन्हें इस योजना को मानने के लिए राजी करना था। दूसरा था उनमें एकता स्थापित करना तथा एक ही व्यक्ति द्वारा सबका नेतृत्व। नरेंद्र ने इन दोनों कार्यों को अपने हाथों में लेकर सफलतापूर्वक पूरा किया। इस कार्य के लिए उन्हें पूरे बंगाल में घूमना पड़ता तथा देश के विभिन्न भागों में भी जाना पड़ता था। कुछ समय के लिए वह संन्यासी बन गए। संन्यासी

के रूप में पुलिस की संदेह दृष्टि से बचकर घूमना आसान था। कुछ अन्य क्रांतिकारी नेता भी संन्यासी बन गए थे और नरेंद्र के साथियों ने सोचा शायद वह भी इन्हीं के पदचिह्नों पर चल रहे हैं। साधु-संन्यासियों को नरेंद्र निरंतर खोजते रहते थे। इसी ने उनके साधु बन जाने के संदेह की पुष्टि की। किंतु यह शीघ्र ही स्पष्ट हो गया कि नरेंद्र आत्मा की मुक्ति का नहीं, वरन मातृभूमि की मुक्ति का मार्ग ढूंढ़ रहे थे। उन दिनों नरेंद्र बनारस, इलाहाबाद, आगरा, मथुरा आदि स्थानों पर गए। इस प्रकार घूम घूमकर जिस निकटता से उन्होंने देश को जाना तथा जो संपर्क स्थापित किए वे बाद में उन कार्यों के लिए बहुत लाभदायक सिद्ध हुए। लगभग एक वर्ष में एक संयुक्त संगठन की स्थापना की गई जिसकी शाखाएं तथा संपर्क बंगाल और उसके बाहर तक फैले हुए थे। यही संगठन जुगांतर पार्टी के नाम से जाना गया।

जेल से छूटने के बाद नरेंद्र ने अपने कार्यों को गुप्त रखने के लिए इंडिया इक्वीटेबल बीमा कंपनी में एजेंट के रूप में काम करना शुरू कर दिया। इन्होंने बेलियाघाटा में चावल की मिल तथा लकड़ी की टाल के बिल कलेक्टर का भी काम किया है। 1912-13 में नरेंद्र अधिकतर सी. गोपाल मलिक लेन के बोर्डिंग हाउस में रहा करते थे। कुछ समय बाद नरेंद्र ने नौकरियां छोड़ दीं तथा एक रेस्तरां खोला जो शस्त्रों को उपलब्ध करने तथा सूचना विनिमय का केंद्र था। सिपाहियों व नाविकों को रेस्तरां बहुत पसंद था, क्योंकि नरेंद्र उनके लिए खास-खास खाना बनाया करते थे।

क्रांतिकारी गुटों की गतिविधियां अब केवल बंगाल तक ही सीमित न थीं। वे भारत के उत्तरी भाग जैसे पंजाब, दिल्ली तथा उत्तर प्रदेश तक फैल चुकी थीं और महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश एवं मद्रास में भी संपर्क स्थापित किए जा चुके थे। युवक जिन्हें बंगाल में प्रशिक्षण मिल चुका था इन भागों में 'कार्यवाही' करने के लिए भेजे गए और इनमें इस्तेमाल किए गए बम तथा पिस्तौलें भी बंगाल की थीं। इस ढंग की बहुत प्रसिद्ध घटना भारत के वायसराय लार्ड हार्डिंग पर 23 दिसंबर 1912 में उनके दिल्ली प्रवेश पर बम फेंका जाना थी। यूरोप, अमेरिका, बर्मा, इंडोनेशिया तथा बैंकाक, सिंगापुर एवं हांगकांग आदि स्थानों के भारतीय क्रांतिकारी समुदायों से संपर्क स्थापित किए गए। पश्चिमी गोलार्द्ध में कनाडा में वैंकुवर एवं अमेरिका में शक्तिशाली क्रांतिकारी गुट थे।

सशस्त्र विद्रोह की तैयारी के लिए पैसों की आवश्यकता थी। धन प्राप्ति का कार्य नरेंद्र को सौंपा गया। नरेंद्र ने बाद में अपने संस्मरणों में लिखा, "आरंभिक खर्चों के लिए धन प्राप्त करने का जो कार्य मुझे सौंपा गया था, वह योजना के अनुसार शीघ्र ही पूरा कर दिया गया।"[8] नरेंद्र के निरीक्षण में की गई अनेक डकैतियों द्वारा धन एकत्र किया गया। उनमें से एक उल्लेखनीय है। 12 फरवरी 1915 को नरेंद्र तथा दो अन्य व्यक्तियों ने दिन-दहाड़े

गार्डन रीच कलकत्ता में बर्ड एंड कंपनी को लूटा जो कि डकैतियों की शृंखला की पहली कड़ी थी। इस डकैती से जो गार्डन रीच राजनैतिक डकैती के नाम से जानी जाती है पूरे कलकत्ते में सनसनी फैल गई। यह पहली बड़ी डकैती थी और पूरा काम बिना गोली चलाए पांच मिनट में ही बंदूक की धमकी से पूरा हो गया। डा. जदुगोपाल मुकर्जी के अनुसार, ''गार्डन रीच डकैती एक अदम्य साहस व निर्भीकता का कार्य था तथा जिसे नरेन भट्टाचार्य ने बहुत ठंडे दिमाग से पूरी दक्षता से संपन्न किया। एक भी गोली नहीं चली।''[9] नरेंद्र को इस डकैती में भाग लेने के कारण एक या दो दिन बाद गिरफ्तार कर लिया गया।

एक और क्रांतिकारी कार्यवाही भी, जो कुछ महीनों पहले की गई थी, ध्यानाकर्षक है। राजद्रोह समिति की रिपोर्ट में इसका विवरण इस प्रकार है, ''कलकत्ता की बंदूक बनाने की फर्म रोडा एंड कंपनी के यहां से चुराई गई पिस्तौलों की घटना का बंगाल के क्रांतिकारी अपराधों की वृद्धि में अति महत्वपूर्ण स्थान है। बुधवार,26 अगस्त 1914 को रोडा कंपनी के क्लर्क ने जिसका काम बाहर से आए शस्त्रों को कस्टम से छुड़ाना था, 202 पेटियां हथियारों तथा गोला-बारूद की छुड़ाईं, किंतु बंसीटार्ट रोड में स्थित उसके मालिक के गोदाम में केवल 192 पेटियां पहुंचीं। दस खोई हुई पेटियों में 50 मौसट पिस्तौलें थीं तथा 46,000 गोलियां इन पिस्तौलों के लिए थीं। पिस्तौलें 300 बोर के बड़े साइज की थीं तथा प्रत्येक पिस्तौल का नंबर था जो रोडा एंड कंपनी में दर्ज था। पिस्तौलें ऐसे बनाई व बंद की गई थीं कि पिस्तौल वाले डिब्बे को कुंदे से फंसा कर एक दूसरा हथियार भी प्राप्त किया जा सकता था जिसे कंधे पर रख कर राइफल की तरह चलाया जा सकता था। अफसरों को विश्वस्त सूचना थी कि इनमें से 44 पिस्तौलें तुरंत नौ विभिन्न क्रांतिकारी समुदायों में वितरित कर दी गई थीं और यह निश्चित है कि ये वितरित पिस्तौलें अगस्त 1914 में की गई 54डकैती या हत्या के प्रयास की वारदातों में इस्तेमाल की गई थीं। यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि ''अगस्त 1914 के बाद बंगाल में घटी कुछ ही क्रांतिकारी हिंसात्मक घटनाएं ऐसी थीं जिनमें रोडा एंड कंपनी से चुराई गई पिस्तौलों का इस्तेमाल नहीं हुआ।''[10].नरेंद्र ने इस 'कार्यवाही' में मुख्य भाग लिया।

लगभग इसी समय अंतर्राष्ट्रीय स्थिति तनावपूर्ण हो गई। क्षितिज पर युद्ध के बादल छा गए। संभावना थी कि जर्मनी तथा इंग्लैंड में युद्ध छिड़ जाएगा। विदेश में रहने वाले क्रांतिकारी मित्रों से संकेत मिल ही चुका था कि यदि युद्ध छिड़ता है तो जर्मनी उनकी सहायता करने को राजी रहेगा।

भारत में क्रांतिकारियों ने जर्मन आधकारियों से भेंट करके बातचीत आरंभ की। 1913 के अंत में नरेंद्र ने कलकत्ता के जर्मन कौंसुलेट जनरल के द्वारा जर्मन लोगों से संपर्क करने का प्रयास आरंभ किया। उन्होंने व जतिन मुकर्जी ने कलकत्ता के जर्मन कौंसुलेट जनरल से

1914 के आरंभ में कई मुलाकातें कीं तथा योजना पर विचार-विमर्श किया कि जैसे ही युद्ध आरंभ हो भारत में सशस्त्र विद्रोह किया जाए तथा छापामार युद्ध कर दिया जाए।

अगस्त 1914 में इंग्लैंड तथा जर्मनी के बीच युद्ध आरंभ हो गया। स्थिति से लाभ उठाने के लिए क्रांतिकारियों ने अपने प्रयत्नों को दुगुना कर दिया। तय किया गया कि एक सशस्त्र विद्रोह की व्यवस्था की जाए। जतिन मुकर्जी को संयुक्त पार्टी का मुख्य नेता चुना गया। जतिन मुकर्जी उन दिनों कलकत्ता से बाहर रह रहे थे और ठेकेदार के रूप में काम कर रहे थे। वे समय समय पर कलकत्ता आते रहते थे। बाद में कलकत्ता आना उनके लिए निरापद न रहा। इसके बाद नरेंद्र ने उनके ठहरने के लिए एक सुरक्षित स्थान का प्रबंध मौंहदिया गांव में किया जो बलसोर से विशेष दूर नहीं है और यूनीवर्सल एम्पोरियम नामक व्यापारिक केंद्र संप्रेषण का माध्यम बनाने के लिए खोला गया। कलकत्ता में ऐसे दो केंद्र अब तक बन चुके थे।

कलकत्ता में विद्रोह की तैयारियां चालू हो गई थीं। विद्रोह के विषय में संशयी व्यक्तियों को भी नरेंद्र ने आश्वस्त कर दिया, यह कह कर कि ऐसे कदम उठाए जाएंगे जिनसे संचार व्यवस्था अपंग हो जाएगी। योजनानुसार चक्रधरपुर तथा संबलपुर में ऐसे केंद्र खोले गए जो यातायात व संचार व्यवस्था आवश्यकता पड़ने पर ठप्प कर सकें। कुछ दिनों बाद बनारस में विद्रोह की योजना पर विचार-विमर्श करने के लिए बैठक हुई। इस बैठक में रायबिहारी बोस, जतिन मुकर्जी, नरेंद्र, अमरेंद्रनाथ चट्टोपाध्याय तथा अतुल कृष्णा घोष ने भाग लिया। मार्च 1915 में क्रांतिकारियों को सूचना मिली कि जर्मनी हथियार भेजने को तैयार है। सूचना के साथ यह सुझाव भी भेजा गया कि समस्त ब्यौरों पर विस्तारपूर्वक विचार करने के लिए एक प्रतिनिधि भेजा जाए। क्रांतिकारी हथियार पाने की आशा से प्रफुल्लित हो उठे। उन्होंने प्रतिनिधि भेजने का निमंत्रण स्वीकार कर लिया। इस कार्य के लिए नरेंद्र को ही चुना गया तथा यही उनके राजनीतिक जीवन का मोड़ सिद्ध हुआ।

2

हथियारों की खोज में

अप्रैल 1915 में नरेंद्र हथियारों की तलाश में भारत से जावा के लिए रवाना हुए। उन्हें वे हथियार तो नहीं मिले जिनकी वे तलाश कर रहे थे, अपितु एक नया व्यक्तित्व उपलब्ध हुआ और एक नई विचारधारा भी मिली। यह सब हथियारों की खोज के आखिरी दौर में ही हुआ।

नरेंद्र 'सी. मार्टिन' बन कर रवाना हुए। जाहिरा तौर पर वे कलकत्ता की फर्म हैरी एंड संस के एजेंट थे। यह फर्म क्रांतिकारियों ने अपनी गतिविधियों को गोपनीय रखने के लिए स्थापित की थी। यह नरेंद्र के एक घनिष्ठ मित्र हरिकुमार चटर्जी के अधिकार में थी। इसी फर्म के द्वारा नरेंद्र का भारत में क्रांतिकारियों से संपर्क कायम रखा गया जब वे हथियारों की खोज में इधर-उधर यात्रा कर रहे थे।

अपने इस लक्ष्य के बारे में एम. एन. राय ने बाद में अपने संस्मरणों में लिखा, "1914 में विश्वयुद्ध छिड़ने के बाद निर्वासित भारतीय क्रांतिकारी जर्मन देश पर ही अपनी आशाएं टिकाए हुए थे और तमाम बड़ी उम्मीदें लेकर उस ओर बढ़े थे। वर्ष के अंत में हमें भारत में यह समाचार मिला कि बर्लिन की भारतीय क्रांतिकारी कमेटी ने जर्मन सरकार से स्वतंत्रता संग्राम की घोषणा करने के लिए आवश्यक धन व शस्त्र देने का उनसे वचन ले लिया है। यह खबर आग की तरह फैल गई, यहां तक कि ब्रिटिश सेना के भारतीय सिपाही भी इससे प्रभावित हुए बिना न रह सके।" उन्होंने आगे लिखा, "अब हमारे सामने जिन हथियारों को देने का वचन दिया था उन्हें देश के अंदर ले जाने की समस्या थी। जर्मनी में उनको हमारे द्वारा सीधे देश में पहुंचाने का प्रश्न ही नहीं उठता था। एक संदेशवाहक को इस प्रस्ताव के साथ बर्लिन भेजा गया कि जर्मनी भारत के निकटतम किसी तटस्थ देश में हथियारों को पहुंचा दे। हमने डच ईस्ट को चुना और 1914 के अंत से पहले मैं जावा के लिए रवाना हो

गया। यह मेरी देश से बाहर की पहली यात्रा थी।''[1]

नरेंद्र के बटाविया पहुंचने पर जो हुआ उसका विवरण राजद्रोह समिति ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है, ''बटाविया पहुंचने पर मार्टिन को जर्मन कौंसिल ने थ्योडोर हैल्फ़रिच से परिचित कराया जिन्होंने बताया कि हथियारों और गोला बारूद की खेप का एक जहाज भारतीयों की क्रांति में सहायता देने के लिए करांची की ओर रवाना हो चुका है। 'मार्टिन' ने तब जोर दिया कि जहाज को बंगाल की तरफ मोड़ दिया जाए।''

''शंघाई के जर्मन कौंसिल के निर्देश के बाद इसको अंततः स्वीकार कर लिया गया। 'मैवरिक' नामक जहाज का माल सुंदरवन में रायमंगल नामक स्थान पर उतरवाने का प्रबंध करने 'मार्टिन' फिर भारत आ गए। कहा जाता है कि इस माल में 30,000 राइफलें और 400 राउंड का गोला बारूद और 2 लाख रुपए थे। इस बीच 'मार्टिन' ने कलकत्ते की जाली फर्म हैरी एंड संस को जो कि प्रसिद्ध क्रांतिकारी द्वारा चलाई जा रही थी तार दिया कि 'कारोबार सहायतापूर्ण है।' जून में हैरी एंड संस ने पैसों के लिए 'मार्टिन' को तार दिया। उसके बाद जून और अगस्त के बीच बटाविया के हैल्फ़रिच की ओर से धन की कई किश्तें हैरी एंड संस को मिलनी शुरू हुईं जो कुल मिलाकर 43,000 रुपए थी जिसमें से अधिकारियों के इस बात का पता चलाने से पूर्व कि क्या हो रहा है क्रांतिकारियों को 33,000 रुपए मिल चुके थे।''[2] नरेंद्र जून के मध्य में भारत वापिस लौटे। मैवरिक के माल को प्राप्त करने की योजनाएं और उसके इस्तेमाल का सबसे अच्छा विवरण राजद्रोह समिति की रिपोर्ट के शब्दों में किया गया है। इसमें कहा गया है, ''उन्होंने हथियारों को तीन भागों में बांटने का निश्चय किया जिन्हें क्रमशः इन स्थानों में भेजा जाएगा :

1. हाटिया, पूर्वी बंगाल के जिले में बरसाल पार्टी के इस्तेमाल के लिए
2. कलकत्ता
3. बालासोर

वे समझते थे कि बंगाल में सेना का मुकाबला करने के लिए संख्या पर्याप्त है किंतु उन्हें बाहर की कुमक का डर था। इस बात को ध्यान में रखते हुए उन्होंने तय किया कि बंगाल की तीन मुख्य रेलों को रोकने के लिए खास खास पुलों को उड़ा दिया जाए। जतींद्र को बालासोर से चलने वाली मद्रास रेलवे का काम सौंपा गया। भोलानाथ चटर्जी को बंगाल-नागपुर रेलवे का जिम्मा लेने चक्रधरपुर भेजा गया जबकि सतीश चक्रवर्ती को अजय जाना था और ईस्ट इंडियन रेलवे का पुल उड़ाना था। नरेंद्र चौधरी और फणींद्र चक्रवर्ती से हाटिया जाने को कहा गया जहां फौज को पहले तो पूर्वी बंगाल जिलों को कब्जे में करने के लिए फिर कलकत्ता की ओर मार्च करने के लिए एकत्र होना था। कलकत्ता की पार्टी को जो कि नरेन भट्टाचार्य जी तथा विपिन गांगुली के नेतृत्व में थी, कलकत्ता के आसपास के तमाम शस्त्रागारों

व शस्त्रों पर अधिकार करना था। इसके बाद फोर्ट विलियम पर कब्जा करना था और बाद में कलकत्ता शहर पर आधिपत्य जमाना था। जर्मन अफसर जो मेवरिक में आ रहे थे उन्हें पूर्वी बंगाल में रुके रहना था और सेना को संगठित करना तथा उन्हें प्रशिक्षति करना था।"[3]

किंतु न तो मेवरिक जहाज पहुंचा न उसका माल पहुंचा। क्रांतिकारी जिन्हें माल की प्रतीक्षा करने तथा माल उठवाने रायमंगल भेजा गया था वहां बीस दिन प्रतीक्षा करने के बाद कलकत्ता वापिस आए। नरेंद्र और उनके सहयोगी अत्यंत निराश हो गए और वे कुछ नहीं कर सके।

अनेक माध्यमों से कई संदेश भेजने के बाद भी जब कोई उत्तर नहीं आया तो निर्णय किया गया कि नरेंद्र को नए सिरे से इंतजाम करने दुबारा बटाविया भेजा जाए। यह भी तय हुआ कि नरेंद्र को जर्मन लोगों के साथ नई योजनाओं पर विचार-विमर्श करने के लिए भेजा जाए जिनमें भूमार्ग से हथियारों को लाने की योजना भी शामिल थी।

राय ने अपने संस्मरणों में इसे ऐसे वर्णित किया है, "जहाज द्वारा हथियारों को चोरी-छिपे लाने की कोशिश असफल हो जाने पर मैं दुबारा विदेश गया, इस विकल्प योजना के साथ कि हथियारों को चीन के भूमार्ग से लाया जाए। इन हथियारों की उत्तर-पूर्वी सरहदों से चोरी से लाया जाएगा जहां हाल ही में अबोरों ने बगावत की थी। मैं जब शस्त्रों को लेने विदेश गया तभी हमारे सहयोगियों की एक और टुकड़ी को जिसका नेतृत्व हम में से सबसे होशियार लोग कर रहे थे अबोरों को भड़काने और पड़ोसी जातियों को बगावत के लिए उकसाने के लिए प्रस्थान करना था। इस बार उन्हें हथियारों से तथा दूसरे बाहरी साधनों द्वारा मदद पहुंचाना था।"[4]

नरेंद्र के प्रस्थान के बाद पार्टी के नेता जतिन्द्र नाथ मुकर्जी की बहादुर मौत पार्टी के लिए एक बड़ा वज्रपात था। जिस ढंग से वे पुलिस से जूझे वह बंगाल के क्रांतिकारी आंदोलन के इतिहास में बालासोर के युद्ध के नाम से अमर रहेगा। इस युद्ध ने जिसमें पार्टी के मुख्य सेनाधीश की मृत्यु हुई, आंदोलन की कमर ही तोड़ दी। कई वर्षों बाद ही पार्टी इस धक्के से संभल पाई और पुनः काम आरंभ किया।

इस बीच नरेंद्र हथियारों की खोज में बराबर लगे हुए थे। इस मौके पर जर्मन लोगों ने उतना सहयोग नहीं दिया। जर्मन कौंसिल की शिकायत थी कि भारतीयों में संगठन की कमी है और वे बातें गुप्त नहीं रख सकते। नरेंद्र ने कौंसिल से तीन या चार मुलाकातें कीं किंतु उन्होंने महसूस किया कि वे किसी भी प्रकार से बात आगे नहीं बढ़ा पा रहे हैं।

"जर्मन लोगों के पास भेजने के लिए आदमी नहीं हैं और जहाज का खतरा उठाने के लिए वे तैयार नहीं थे।"

दूसरी बार जो कोशिश की गई, उसका विवरण संस्मरणों में इस प्रकार है, "मैंने एक

और कोशिश की कि इंडोनेशिया से विदेशी सहायता ली जाए। यह योजना इस प्रकार थी कि सुमात्रा के उत्तरी कोने के एक बंदरगाह में जो जर्मन जहाज स्थानबद्ध थे उनसे अंडमान द्वीपों पर आक्रमण कराया जाए तथा वहां के कैदियों को स्वतंत्र करा कर उन्हें हथियार दे दिए जाएं और उड़ीसा के समुद्री तट से इस मुक्ति सेना को प्रविष्ट करा दिया जाए। जहाज हथियारों से लैस थे जैसे कि कई बड़े जर्मन जहाज हथियार समेत रखे जाते थे ताकि युद्ध के समय तुरंत ही इनको काम में लाया जा सके। इनमें प्रत्येक जहाज में कई तोपें भी थीं। जहाज के चालक तथा अन्य सदस्य भी जलसेना के ही विभिन्न वर्गों में से थे। उन्हें बंदी शिविर से भागना था, जहाजों पर कब्जा करके जलमार्ग से प्रस्थान करना था। हर जहाज में जो मुट्ठीभर नाविक थे वे भी छुपकर भागने में सफल हो जाते। कई सौ राइफलें व काफी गोला बारूद समेत छोटे हथियार चीनी तस्करों द्वारा प्राप्त किए जा सकते थे जिन्हें वे स्वयं जहाजों तक पहुंचा देते। यह योजना असफल हो गई क्योंकि जर्मन लोग ऐसा खतरनाक खेल खेलने के पक्ष में नहीं थे। बिल्कुल आखिरी समय पर न तो हथियार खरीदने के लिए पैसा आया और जिस दिन कौंसिल-जनरल को इस योजना को कार्यान्वित करने का आदेश देना था उस दिन वह रहस्यपूर्ण ढंग से गायब हो गया।"[5]

नरेंद्र का एक और प्रयास काफी महत्वाकांक्षी किस्म का था। इसके द्वारा वे सन यात सेन तथा अन्य चीनी क्रांतिकारी नेताओं के संपर्क में आए और पूरे चीन में घूमने का भी उन्हें अवसर प्राप्त हुआ। जब वे अपनी कोशिशों में लगे हुए थे, नरेंद्र एक रात के लिए चीनी नगर में ताइंस्टीन में अंग्रेजों की हिरासत में ले लिए गए। ब्रिटिश कौंसिल-जनरल की न्यायशीलता तथा अपने उपायों से ही वे इस कठिन स्थिति से निकल पाए। 1915 के अंत में भारत और बर्मा की सीमाओं के निकट स्थित दो चीनी जि लों यूनान और सेचुआन में बगावत हुई। यह बगावत युआन शोकाई के राजतंत्र पुनः स्थापित करने के विरुद्ध थी। बागियों के पास हथियार काफी संख्या में थे। नरेंद्र का सुझाव था कि चीनी बागियों को कुछ हथियार सीमा के उस पार भारतीय क्रांतिकारियों को पहुंचाने चाहिए। सन यात सेन को सुझाव पसंद आया और उन्होंने नरेंद्र से कहा कि वे जर्मन राजदूत से हथियार खरीदने के लिए पचास लाख डालर प्राप्त करें। यदि पैसों का इंतजाम हो गया तो सन यात सेन अपना दूत यूनान भेजेंगे और नरेंद्र वहां जाकर उस बेशकीमती माल पर कब्जा कर लेंगे। कई वर्ष बाद राय ने अपने संस्मरणों में लिखा, " इस भव्य योजना ने मुझे साहस की भावना से परिपूर्ण कर दिया। कदाचित कुछ ही महीनों में भारत की सीमाओं पर एक सेना संगठन के लिए पर्याप्त शस्त्रों से लैस होकर पहुंचने का स्वप्न चरितार्थ होने वाला था।"

योजना असफल हो गई, क्योंकि ऐन मौके पर जर्मन लोग इसके लिए अपेक्षित इतनी बड़ी रकम खर्च करने के लिए तैयार नहीं हुए। इससे नरेंद्र को क्रोध आया और उनमें जर्मन

लोगों के प्रति कटुता पैदा हुई । अपने संस्मरणों में बाद में उन्होंने लिखा, "जर्मन लोगों का हमें पर्याप्त सहायता देने का मंतव्य कभी नहीं था और जर्मन लोगों की भारतीय क्रांतिकारियों को हथियार देने की सारी योजना एक खोखला मजाक थी, शत-प्रतिशत धोखा था ।" नरेंद्र की हथियारों की सक्रिय खोज इस चरण पर समाप्त हो गई यद्यपि वे नई दुनिया पहुंचने पर भी कई महीनों तक हथियारों को प्राप्त करने की कोशिश करते रहे ।

जर्मन राजदूत ने नरेंद्र को जब वे बर्लिन जा रहे थे, नई दुनिया की ओर रवाना किया । पचास लाख डालर की बृहत राशि जो नरेंद्र ने चीन से हथियार खरीदने के लिए मांगी थी, राजदूत के कथनानुसार केवल उच्च अधिकारियों द्वारा ही मंजूर की जा सकती थी । इसलिए उन्होंने नरेंद्र को परामर्श दिया कि वे बर्लिन जाएं और अपनी योजना युद्ध के सर्वोच्च अधिकारी और उसके जनरल स्टाफ के सामने रखें । चीन में उस समय जर्मन राजदूत एडमिरल वाल हिंट्ज़े थे । उन्होंने नरेंद्र से कहा कि वे बर्लिन जाएं, क्योंकि "उन्हें लगा कि सैनिक दृष्टि से मेरी योजना अमल करने योग्य है और इसलिए हो सकता है हाई कमान इस पर पैसा लगाने के लिए राजी हो जाए ।"[7] उन्होंने यात्रा का प्रबंध किया और नरेंद्र को पांडिचेरी निवासी फादर मार्टिन के नाम का पासपोर्ट बनवा कर दिया जो पासपोर्ट के अनुसार धर्मशास्त्र का अध्ययन करने पेरिस जा रहे थे ।

नरेंद्र ने इस समय तक अपने नेता व कमांडर-इन-चीफ जतिन मुकर्जी की युद्ध में मृत्यु का दुखद समाचार सुन लिया था और क्रांतिकारी आंदोलन के अपने कई सहयोगियों के पकड़े जाने का तथा लंबी अवधि के लिए जेल भेजे जाने व अपने कई सहयोगियों के अंतर्ध्यान हो जाने का भी समाचार सुन लिया था । आंदोलन इन बीच के महीनों में विघटित हो चुका था और नरेंद्र के अंदर भारत लौटने का कोई उत्साह शेष नहीं रह गया था ।

3

अमेरिका और मैक्सिको

नरेंद्र जो शीघ्र ही एम.एन. राय बनने वाले थे,अमेरिका के पश्चिमी तट पर स्थित सनफ्रांसिस्को में जून 1916 में पहुंचे। उनका वहां पहुंचना अलक्षित न रह सका। एक स्थानीय अखबार ने लिखा,''जब हांगकांग से चला निप्पनमारू जहाज बंदरगाह पर पहुंचा, इस जहाज में एक रहस्यपूर्ण व्यक्ति था। वह एस. ए. मार्टिन है जो इस नाम के बावजूद हिंदू है और उच्च श्रेणी का ब्राह्मण है। मार्टिन ने कहा है कि वह फ्रैंच-इंडियन बंदरगाह से जहाज पर चढ़ा है तथा अध्ययन करने पेरिस जा रहा है। यद्यपि सहयात्रियों का कहना है कि वह उस स्थान से जहाज पर नहीं चढ़ा है और उनका विश्वास है कि या तो वह क्रांतिकारी नेता है या अंग्रेज सरकार का कोई गुप्तचर है।''।

नरेंद्र ने इस प्रचार का स्वागत नहीं किया, क्योंकि इतने समय तक की जाने वाली कार्यवाहियों की निरर्थकता का अनुभव उन्हें हो चुका था और अब वे किसी और दिशा की ओर उन्मुख होना चाहते थे, जैसा कि उन्होंने अमेरिका और मैक्सिको में रहने के दौरान किया। एक भारतीय मित्र ने जिनको वह जानते थे और जिनके साथ वह स्टैनफोर्ड यूनीवर्सिटी के कैम्पस में रह चुके थे उन्हें सलाह दी कि वह अपना नाम बदल डालें ताकि अतीत मिट जाए और वह एक नए जीवन की शुरुआत कर सकें। नरेंद्र ने इस सलाह को मान लिया तथा अपना नाम बदल कर मानवेंद्र नाथ राय रखा। मानवेंद्र नाथ वही हैं जो नरेंद्रनाथ हैं। यद्यपि उनका कुलनाम—'राय' भट्टाचार्य से बहुत भिन्न है। यह जानना संभव नहीं है कि यह खास नाम 'राय' जो आम बंगाली नाम है क्यों चुना गया।

एम. एन. राय नाम का जन्म स्टैनफोर्ड यूनीवर्सिटी के कैम्पस में हुआ था। राय ने इसे अपना 'पुनर्जन्म' कहा है। जैसा कि उन्होंने अपने 'संस्मरणों' में लिखा हैं, इसी से उन्होंने निरर्थक अतीत की ओर से हमेशा के लिए मुख मोड़ लिया और साहसिक कार्यों एवं उपलब्धियों की नई जिंदगी की ओर अग्रसर हुए। जैसा कि उन्होंने लिखा, ''यह नई दुनिया

मेरी यात्रा का आह्लादपूर्ण आरंभ था।"[2] किंतु वे बिना संघर्ष किए अपने पुराने ध्येय को जो कि भारत में क्रांति के लिए शस्त्र प्राप्त करने का था छोड़ने को तैयार नहीं थे। यह विचार अमेरिका और मैक्सिको में रहते समय भी उन्हें कोंचता रहता था। अंत में इस विचार को उन्होंने तब त्यागा जब उन्हें मालूम हो गया कि जर्मन इस विषय को गंभीरता से नहीं ले रहे थे और जब क्रांति के विस्तृत रूप की नई विचारदृष्टि उनके मस्तिष्क पर हावी हो गई।

इस समय तक पुलिस के अत्याचारों ने भारत में क्रांतिकारी संगठन को तितर-बितर कर दिया था और अगर वे हथियार को प्राप्त कर भी लेते तब भी उनका उपयोग न कर पाते।

स्टैनफोर्ड में राय अनेक विद्वानों और राजनैतिक कार्यकर्ताओं से मिले। उन्होंने इनमें से अनेक लोगों से मैत्री स्थापित की। सबसे अधिक फलदायक उनकी मित्रता इवलिन ट्रेंट से थी। वे उनके साथ न्यूयार्क चली आईं और वहीं उनसे विवाह कर लिया। वे राय की राजनैतिक सहयोगिनी बनीं। वे उनके साथ मैक्सिको व रूस भी गईं तथा उन्होंने उनके राजनैतिक व साहित्यिक कार्यों में बहुत सहायता दी। उन्होंने राय के साथ मिल कर कई पुस्तकें लिखीं और 'शांति देवी' उपनाम से साम्यवादी पत्रिकाओं के लिए समय समय पर लेख लिखती रहीं। यह सहयोग तब तक बना रहा जब तक कि वे 1926 में अलग न हो गए।

न्यूयार्क में राय अनेक अमेरिकी समाजवादियों एवं अन्य प्रगतिवादियों के संपर्क में आए। वे भारतीय राष्ट्रवादी नेता लाला लाजपत राय के संपर्क में भी आए। दोनों अच्छे मित्र बन गए। न्यूयार्क में उन्होंने समाजवाद का सही योजनाबद्ध अध्ययन शुरू किया। यह अध्ययन समाजवाद का मुकाबला करने के इरादे से ही शुरू किया गया था। किंतु शीघ्र ही वह जान गए कि वह समाजवाद के अनुयायी बन गए हैं। आरंभ में राय ने समाजवाद के भौतिकवादी दर्शन को अस्वीकार किया। पर स्वीकार उसे बाद में रूसी क्रांति के नेता माइकेल बोरोडिन के मार्ग निर्देशन में किया जिनसे वह मैक्सिको में मिले थे और वहीं उनसे उनकी मित्रता हुई। राष्ट्रवाद से समाजवाद की ओर उन्मुख होना राय के राजनैतिक जीवन की प्रमुख घटना थी। बंकिमचंद्र तथा विवेकानंद और रूढ़िवादी चिंतन से पुष्ट उनके अतीत का तीव्र विखंडन था।

राय क्रांति के लिए अब भी काम कर रहे थे। लेकिन समाजवाद की विचारधारा को स्वीकार करने के बाद जिस क्रांति की वह कल्पना कर रहे थे वह बुनियादी तौर से उस क्रांति से भिन्न थी जिसके लिए वह उग्र राष्ट्रवादी के रूप में काम कर रहे थे। एक क्रांति में एक नए सामाजिक वर्गीकरण की कल्पना थी जबकि दूसरी क्रांति अंग्रेजी शासन को उखाड़ फेंकने तक में ही सीमित थी। एक क्रांति आम जनता की सुनियोजित कार्यवाहियों का परिणाम बनती जबकि दूसरी क्रांति मात्र थोड़े से बहादुर क्रांतिकारियों द्वारा लाई जाने वाली थी। एक वित्तीय तत्वों के सशक्त प्रभावों पर आधारित थी दूसरी इन तत्वों की ओर से बिल्कुल उदासीन थी।

एक में युक्तिसंगत भौतिकवादी दृष्टिकोण अपनाने का आग्रह था जबकि दूसरी क्रांति में क्रांतिकारियों या जनता का मानसिक या सामाजिक दृष्टिकोण बदलने पर कोई जोर नहीं था। समाजवाद का लंबा रास्ता राय ने एक ही पग में नहीं नापा था। वे धीरे धीरे अग्रसर हुए थे। किंतु एक वर्ष बाद मैक्सिको में जो उन्होंने समाजवाद की अपेक्षा साम्यवाद अपनाया, यह परिवर्तन अतिशीघ्र हुआ। उन दिनों साम्यवाद ही समाजवाद की मंजिल तक पहुंचने का सबसे सफल मार्ग था।

न्यूयार्क में राय के समाजवाद के अध्ययन में अचानक ही विघ्न आ पड़ा क्योंकि अमेरिका के जून 1917 में युद्ध में शामिल हो जाने के बाद सनफ्रांसिस्को में हिंदू-जर्मन कांस्प्रेसी केस चलाया गया जिसमें राय भी फंसे हुए थे। इस केस में अनुमानतया सौ अमेरिकी, जर्मन तथा भारतीय थे। इनके ऊपर आरोप था कि "इन्होंने अमेरिका तटस्थता कानून को भंग कर एक ऐसे देशव्यापी षड्यंत्र में भाग लिया जिसको कैंसर की वित्तीय सहायता प्राप्त थी और जो जर्मन विदेश कार्यालय के प्रोत्साहन पर भारत में विद्रोह फैलाने और जर्मन लोगों को लड़ाई जारी रखने में मदद दे रहा था। फलतः ग्रेट ब्रिटेन को मजबूर होकर अपनी सेनाएं विद्रोह दबाने के लिए यूरोप से हटानी पड़ीं।"[3]

राय को एक शाम कोलंबिया यूनीवर्सिटी के कैम्पस में गिरफ्तार कर लिया गया जहां वे उस सभा से लौटे थे जिसमें लाजपत राय ने भाषण दिया था। सवेरे छूटने से पहले उन्हें रात के कुछ घंटे जेल में बिताने पड़े और उन्हें आदेश दिया गया कि वह कुछ घंटों बाद टाउन हाल में ग्रैंड जूरी के सामने उपस्थित हों। ग्रैंड जूरी ने उन पर "अमेरिका के अप्रवास नियम भंग" करने का आरोप लगाया और निजी जमानत पर, इस शर्त पर कि मुकदमा बाद में चलाया जाएगा, रिहा कर दिया। राय इस निश्चय के साथ कि लौटकर दुबारा वहां नहीं जाएंगे, कचहरी से बाहर निकल गए। बाद में उन्होंने 'संस्मरणों' में लिखा, "जेल जाना अभी तक क्रांतिकारी गुण नहीं माना गया था। इसके कारण भी थे। गांधी जी से पूर्व राजनैतिक अपराध में हुई जेल में सरकार का सत्कार अच्छा नहीं था और यह जेल का समय कई कष्टपूर्ण वर्षों तक चलता था जिसके परिणामस्वरूप देश-प्रेम की कड़ी परीक्षा हो जाती थी। स्वाभाविक था उस समय के क्रांतिकारी, जितना हो सकता था, अपने को जेल से बाहर रखने की कोशिश करते थे यद्यपि जेल की अपेक्षा उनमें से कुछ को फांसी चढ़ने पर भी कोई आपत्ति न थी।"[4]

फरार होना राय के लिए नई बात न थी। ऐसा उन्होंने कई बार भारत में भी किया था। अब फिर उन्होंने इसी तरीके को अपनाने की ठानी। उन्होंने अपने समाजवादी मित्रों से मैक्सिको के विषय में तथा सामाजिक क्रांति जो वहां हो रही थी उस बारे में एवं कैसे देश के एक भाग युकाटान राज्य में समाजवाद स्थापित हो चुका था, इन सब बातों के बारे में सुना था। उनके पास उस राज्य के गवर्नर जनरल अलवाराडो के नाम से एक अपना परिचय पत्र भी था।

उन्होंने निश्चय कर लिया कि वह मैक्सिको भाग जाएंगे। मैक्सिको सीमा कई सौ मील दूर थी किंतु यहां विशेष चौकसी नहीं रखी जाती थी। न्यूयार्क की पुलिस को चकमा देकर वह दो दिन की रेल यात्रा के बाद मैक्सिको पहुंच गए।

राय जुलाई 1917 में मैक्सिको पहुंचे। वहां वे एक भगोड़े के रूप में थे जो अमेरिका में जमानत का उल्लघंन कर चुके थे। वे ब्रिटिश न्याय की दृष्टि में भी ऐसे फरार अपराधी थे जिनपर तमाम राजनीतिक डकैतियों तथा अन्य अपराधों का आरोप लगा हुआ था जो उन्होंने भारत में किए थे। लेकिन युद्ध के उस समय में, जब मैक्सिको औपचारिक रूप से तटस्थ देश था किंतु जर्मनी के प्रति सहानुभूत था, अमेरिका से या ग्रेट ब्रिटेन से भागे हुए राजनैतिक अपराधियों के लिए देश में प्रवेश निषिद्ध नहीं था। मैक्सिको तट उनके लिए सुरक्षित स्थान था। जब राय मैक्सिको पहुंचे उनके पास न तो पैसा था न ही उनका कोई मित्र था। अधिकारियों का विश्वास प्राप्त करने हेतु उनके पास युकाटान राज्य के गवर्नर जनरल अलवाराडो के नाम केवल परिचय पत्र था। किंतु यह शहर मैक्सिको से बहुत दूर था और वहां पहुंचना असंभव-सा था। उस पत्र द्वारा ही वह मैक्सिको के उच्चाधिकारियों के तबके में घुसने में सफल हुए। जावा में जो उनके जर्मन सैनिक संगठन के अफसरों से संपर्क बन गए थे, उस कारण यहां उनको काफी मात्रा में धन राशि भी प्राप्त हो गई। इन्हीं दो सुविधाओं से उन्होंने मैक्सिको में जीवन आरंभ किया। जरा भी यह अहसास किए बिना कि वे देश के राजनैतिक जीवन में एक कड़ी भूमिका अदा करेंगे। उन्होंने जो भूमिका अदा की वह किसी भी दृष्टि से महान थी और बेजोड़ थी क्योंकि यह भूमिका एक ऐसे व्यक्ति ने अदा की जो उस देश के लिए नितांत अजनबी था जिसका प्रवेश भी राजनैतिक भगोड़े के रूप में हुआ था।

अपने पहुंचने के एक सप्ताह पूर्व ही राय दो जर्मन अफसरों से मिले जिनसे वे इंडोनेशिया में पहले भी मिल चुके थे। उन्होंने उनका संपर्क उच्च अफसरों से कराया। राय की उस योजना के विषय में भी बातचीत हुई जो उन्होंने जब उनका नाम नरेन था, बनाई थी कि चीन से हथियार खरीदे जाएं और भूमिमार्ग द्वारा उन्हें भारत पहुंचाया जाए। योजना स्वीकृत कर ली गई और राय से कहा गया कि वे चीन जाकर योजनानुसार कार्य करें। राय जाने के लिए उत्सुक नहीं थे, किंतु आदत से मजबूर होने से उन्होंने वहां जाना स्वीकार कर लिया। बाद में यह योजना असफल हो गई क्योंकि जिस जापानी स्टीमर से राय को प्रस्थान करना था वह वहां नहीं पहुंचा। वह फिर मैक्सिको शहर लौट आए और फिर जो राजनैतिक कार्य वे करना चाहते थे उसको खोजना आरंभ कर दिया। जर्मन अफसरों के संपर्क से उन्हें दो प्रकार से मदद मिली। मैक्सिको के सरकारी हलकों के प्रेजीडेंट तक उनकी पहुंच हो गई। दूसरे उनके हाथ एक बड़ी धनराशि भी आ गई। यह धन उन्हें उनके चीन के काम के लिए दिया गया था। जब चीन का काम पूरा करना असंभव हो गया तो कुछ दिनों तक वे यह सोचते

रहे कि धन जर्मन लोगों को लौटा दें, अंत में उन्होंने निश्चय किया कि धन वे अपने पास रखेंगे। इससे एक नैतिक समस्या उठ खड़ी हुई किंतु इसका समाधान उन्होंने इस निश्चय से किया कि इस धन का वे क्रांति को आगे ले जाने के लिए ही प्रयोग करेंगे और वास्तव में यही उन्होंने किया। उन्होंने धन मैक्सिको की सोशलिस्ट पार्टी को और अधिक संगठित करने में लगाया और बाद में इसी से उन्होंने बोरोडिन तथा वाशिंगटन में रूसी ट्रेड मिशन की सहायता की। इस दूसरे कार्य के बारे में राय ने अपने 'संस्मरणों' में लिखा, "बोलशेविकों से मेरा संपर्क उन्हें वित्तीय सहायता देने से ही आरंभ हुआ। जब ऐ बोलशेविकों के हाथ में सत्ता आई, रूसी साम्यवादी आंदोलन को बढ़ाने के लिए पूरे संसार में सभी निकटवर्ती व दूर स्थानों में भेज दिया गया। एक बार कम से कम लेनदेन का क्रम उलट गया था।"[5] साम्यवादी अंतर्राष्ट्र के साथ काम करने के शुरू के कुछ वर्षों में यह ऐसा अवसर था जब आर्थिक सहायता के लिए राय की सराहना हुई।

जब राय मैक्सिको पहुंचे, जनरल वानुस्त्यार्नो करंजा ने अपनी सर्वोच्च सत्ता स्थापित कर ली थी और देश के प्रेजीडेंट बन गए थे। गृहयुद्ध समाप्त हो चुका था किंतु देश अब भी अशांत अवस्था में था। केंद्रीय सरकार की हुकूमत कुछ भागों में नहीं मानी जा रही थी। प्रजीडेंट करंजा ने एक नए संविधान की घोषणा की जिसके अनुसार जनसाधारण को कुछ अधिकार प्राप्त हुए तथा मजदूरों एवं किसानों के हितों को भी प्रोत्साहन दिया गया। सरकार आमतौर से लोकप्रिय थी किंतु किसी भी संगठित सर्वप्रिय गुट का इसे समर्थन नहीं प्राप्त था। ऐसे समर्थन की आवश्यकता तब स्पष्ट हो गई जब राय के आने के कुछ ही सप्ताहों बाद देश के सामने अमेरिकी आक्रमण का खतरा खड़ा हो गया। उस समय सरकार को जनता का समर्थन प्राप्त करने में राय ने बहुत मदद दी।

राय ने राजनैतिक कार्य वहां के प्रमुख दैनिक पत्र एल पूब्लो में लेख लिखने से आरंभ किया जो अनौपचारिक रूप से सरकार का ही मुखपत्र माना जाता था। लेख अंग्रेजी में लिखे जाते थे और फिर उनका स्पैनिश में जो उस देश की भाषा थी, अनुवाद किया जाता था। इन लेखों से उदारतावादी राजनीतिज्ञों व समाजवादी कार्यकर्ताओं का ध्यान उनकी ओर आकर्षित हुआ। मैक्सिको में कुछ लोग थे जो अपने आपको समाजवादी कहते थे। परंतु वे वास्तव में समाजवादी कम और अराजकतावादी तथा श्रमिक संघवादी अधिक थे।

वे न तो राजनीतिक कार्यवाही में विश्वास रखते थे न ही देश सुरक्षा में। वे मध्य वर्गीय बुद्धिजीवियों से भी मतलब नहीं रखना चाहते थे। राय को उन्हें शिक्षित करना पड़ा तथा इस बात के लिए राजी करना पड़ा कि उन्हें सिद्धांतों पर आधारित एक राजनैतिक पार्टी बनानी चाहिए जो हालातों के रुख को प्रभावित कर सके। इस काम में उन्हें कुछ अमेरिकी समाजवादियों तथा शांतिवादियों से काफी मदद मिली। ये भागकर मैक्सिको चले आए थे

क्योंकि ये साम्राज्यवाद में भाग नहीं लेना चाहते थे। कुछ महीनों में समाजवादी पार्टी बनाने लायक अनुकूल स्थिति हो गई। एक शानदार सम्मेलन दिसंबर 1917 में मैक्सिको में किया गया और समाजवादी पार्टी की स्थापना कर दी गई। सम्मेलन में राय को पार्टी का मुख्य सचिव चुना गया। पार्टी बनाने में उनका काम इतना महान था कि किसी ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि वह एक विदेशी थे। ये भारतीय सहयोगी लोगों की दृष्टि में इतने ऊंचे थे कि हरेक ने इस चुनाव का स्वागत किया।

पार्टी सम्मेलन ने एक समाजवादी कार्यक्रम अपनाया और सरकार से मांग की कि वह जनता की उन्नति के लिए कई कदम उठाए। साथ ही इसने सरकार को अमेरिकी आक्रमण का मुकाबला करने के लिए भी अपना समर्थन दिया। यह उस योजना के अनुसार ही था जो राय ने बनाई थी। उन्होंने प्रेजीडेंट से तथा सरकार के अन्य महत्वपूर्ण लोगों से यह आश्वासन ले लिया था कि और अधिक उदार नीति अपनाई जाएगी और ऐसी ही कोशिश की जाएगी जिससे कि श्रमिकों व किसानों की तात्कालिक मांगें पूरी हों।

सम्मेलन के थोड़े समय बाद समाजवादी पार्टी के नेता तथा सरकार के सहानुभूतिपूर्ण रवैए के सच्चे हिमायती प्लूटार्को इलियास कालेस को श्रम मंत्री नियुक्त किया गया। इस नियुक्ति ने एक और जिम्मेदारी राय के कंधों पर लाद दी। उन्हें लेबर बिल की रूपरेखा बनानी पड़ी और श्रम मंत्री के साथ श्रमिकों को जो हड़तालें कर रहे थे, शांत करने कई स्थानों पर जाना पड़ा। इसके अतिरिक्त उन्हें पार्टी पत्र के संपादन में तथा पार्टी संगठन को मजबूत करने में भी मदद देनी पड़ती थी। समाजवादी पार्टी की कार्यवाहियों से सरकार की समाजवादी नींव और भी मजबूत,चौड़ी व गहरी हो गई। लोगों से सरकार का समर्थन प्राप्त करने के बाद,बाह्य आक्रमण का खतरा टल गया। प्रेजीडेंट तथा सरकार ने इस राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्थिति में लाभदायी परिवर्तन लाने का पूरा श्रेय राय को दिया।

जब राय समाजवादी पार्टी बनाने में लगे हुए थे एक रहस्यमय आगंतुक मैक्सिको शहर आया। वे थे रूस की बोलशेविक पार्टी के एक नेता माइकेल बोरोडिन। वे नई दुनिया में किसी गोपनीय लक्ष्य से आए थे। मास्को ने उन्हें एक लाख रूबल की कीमत के राजसी जवाहरातों के साथ भेजा था, इस आदेश से कि उन्हें बेचा जाए और बेचकर जो पैसे मिलें,उन पैसों को वाशिंगटन के ट्रेड मिशन को चलाने तथा दोनों अमेरिका में साम्यवादी आंदोलन को बढ़ाने में खर्च किया जाए। बोरोडिन ने जवाहरातों को दो सूटकेसों के तलों में सिल दिया था। यात्रा के समय उन्होंने सूटकेसों को एक आस्ट्रियन सैनिक अफसर को सौंप दिया, जिसे उस अफसर को शिकागो में उनकी पत्नी के पास पहुंचाना था। किसी दुर्घटना के कारण यह अफसर एक वर्ष तक अपनी जिम्मेदारी पूरी न कर सका। इस वजह से बोरोडिन न्यूयार्क में फंस गए जहां से उन्हें गिरफ्तारी से बचने के लिए शीघ्र ही चले जाना था। इस तरह वे

मैक्सिको शहर बिना पैसों के और छद्म नाम रखकर पहुंचे। मैक्सिको शहर में उन्हें समाजवादी पार्टी तथा इसके हिंदू महासचिव के बारे में ज्ञान हुआ। उन्होंने राय की तलाश की तथा उनसे मिले। यह भेंट ही राय के राजनैतिक जीवन के लिए निर्णायक सिद्ध हुई।

बोरोडिन जिस कठिन परिस्थिति में पड़ गए थे वह जानने पर राय ने उन्हें अपने यहां रहने के लिए आमंत्रित किया। राय ने उनको आर्थिक चिंताओं से भी छुटकारा दिलाया। उन्होंने शिकागो में बोरोडिन की पत्नी को तथा वाशिंगटन में रूसी व्यापार संघ को पैसे भेजे। इस ढंग से उन्होंने उन पैसों का इस्तेमाल किया जो उन्हें जर्मन लोगों से मिले थे। उन्होंने उस सैनिक अफसर तथा उसको सौंपे गए सूटकेसों को ढुंढ़वाने का भी इंतजाम करवाया। खोज फलदायक नहीं हुई किंतु अंततः सूटकेस बोरोडिन की पत्नी तक पहुंच गए। इस दौरान जब बोरोडिन मास्को पहुंचे तो उनपर राजसी जवाहरातों के गबन का आरोप लगाया गया। उनको जरूर सजा मिलती, परंतु राय की गवाही ने उन्हें निर्दोष साबित कर दिया और उनका जीवन बचाया। राय ने अपने संस्मरणों में लिखा था कि यह उनका क्रांति के लिए दूसरा योगदान था।

राय और बोरोडिन बहुत अच्छे मित्र बन गए। बाद में मास्को व चीन में दोनों ने साथ साथ काम किया। राजनैतिक मसलों पर समय समय पर मतभेद होने पर भी यह मित्रता राय के कमिन्टर्न से संपर्क रहने के पूरे समय तक बनी रही।

बोरोडिन ने ही राय को पूर्ण रूप से साम्यवादी बनाया। बोरोडिन बहुत पढ़े-लिखे तथा सुसंस्कृत व्यक्ति थे और राय सदा सीखने के इच्छुक शिक्षार्थी थे। राय ने उनसे न केवल द्वंद्वात्मक भौतिकवाद की पेचीदगियां ही सीखीं, बल्कि यूरोपीय संस्कृति की श्रेष्ठ महत्ता तथा वहां की कला व संस्कृति की प्रशंसा करना भी सीखा। राय ने उनसे विश्वव्यापी सामाजिक क्रांति की अत्यधिक आवश्यकता को तथा उसे करने की युक्तियों व संगठित करने की प्रणाली को भी सीखा।

राय ने बोरोडिन का परिचय प्रेजीडेंट करंजा से तथा सरकार के अन्य महत्वपूर्ण व्यक्तियों से कराया। बोरोडिन का उनपर अच्छा प्रभाव पड़ा और राय के प्रयत्नों द्वारा रूसी सरकार व कमिन्टर्न के कार्य के लिए कई सहूलियतें प्राप्त करने में भी सफल हुए। इस प्रकार मैक्सिको में राय की ही प्रतिष्ठा के कारण बोलशेविकों को नई दुनिया में पैर जमाने का मौका मिला। बोरोडिन ने जो काम उन्हें सौंपा था वह पूरा किया और वे जानते थे कि वह काम राय की मदद के बिना पूरा नहीं हो सकता था।

रूसी क्रांति का समाचार पूरे संसार में फैल चुका था और इससे कई देशों के वातावरण में लहर-सी दौड़ गई थी। समाजवादी पार्टी में यह मांग थी कि रूसी क्रांति के समर्थन की घोषणा कर दी जाए और अपने आप को बाद में स्थापित हुए साम्यवादी अंतर्राष्ट्र से संबंधित

कर दिया जाए। मांग ने और भी जोर पकड़ा जब यह खबर फैल गई कि बोलशेविक दूत महासचिव के अतिथि के रूप में शहर में मौजूद हैं। एक सुझाव दिया गया कि इसको साम्यवादी पार्टी में बदलने के लिए एक विशेष अधिवेशन बुला लिया जाए। कुछ हफ्तों बाद सम्मेलन हुआ। राय ने इसका सभापतित्व किया। कांग्रेस ने पार्टी के नाम को बदलने का निश्चय किया। यह रूस के बाहर दुनिया की पहली साम्यवादी पार्टी बनी। इसने कमिन्टर्न द्वारा प्रकाशित घोषणापत्र स्वीकार किया और अपने को इससे जोड़ने का निश्चय किया। अगले वर्ष के मध्य में मास्को में होने वाली कमिन्टर्न की दूसरी कांग्रेस में प्रतिनिधि भेजना भी तय हुआ। प्रतिनिधियों के नाम नहीं बताए गए थे पर यह स्पष्ट था कि उनमें से एक राय भी होंगे।

बोरोडिन ने राय के मास्को जाने की पृष्ठभूमि पहले ही तैयार कर ली थी। वे बराबर राय के कार्यों की रिपोर्ट भेजते रहे थे। वे इस बात के लिए उत्सुक थे कि राय दूसरी कांग्रेस में सम्मिलित हों तथा रूसी क्रांति के अन्य नेताओं से मिलें। इस निमंत्रण से राय के सामने एक नई संभावना उद्घाटित हुई। यह विश्व शांति के लिए उन लोगों के साथ काम करने का अवसर था जिन्होंने अपने देश में क्रांति लाकर अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित कर दी थी। यह बड़ा आकर्षक भविष्य था और तब भी राय के लिए निर्णय करना आसान नहीं था। मैक्सिको उनके प्रति कृपालु तथा आतिथ्यपूर्ण रहा था। यहीं उन्हें एक दूसरे प्रकार का राजनीतिक कार्य करने का मौका मिला था। एक ऐसा कार्य जिसके बारे में वे भारत में काम करते समय परिचित नहीं थे। उन्होंने कई मित्र बना लिए थे और वे जानते थे कि उन्हें उनके जाने का निर्णय सुनकर दुख होगा पर एक लालच था। बोरोडिन ने उनका ध्यान इस बात की तरफ खींचा था कि मास्को भी भारत की ओर बढ़ रहा है और मास्को से वे सही समय पर भारतीय क्रांति का काम पुनः आरंभ करने जा सकते हैं। बात तय हो गई पर निर्णय लेने से पूर्व राय ने प्रेजिडेंट करंजा तथा अन्य लोगों से भी विचार-विमर्श किया और उनकी सहमति प्राप्त की थी।

राय ने सन 1919 में मैक्सिको छोड़ा। उनके लिए राजनयिक पासपोर्ट का इंतजाम किया गया और यूरोपीय देशों के मैक्सिको प्रतिनिधियों से कह दिया गया जो भी उन्हें मदद चाहिए वे दें। ईवलिन राय जो मैक्सिको में उनके साथ थीं, वे भी मास्को गईं।

संस्मरणों में राय ने मैक्सिको के सत्कार व सहृदयता की बहुत अधिक प्रशंसा की है तथा हृदय को छूनेवाले शब्दों में बताया कि उस देश में ढाई साल रहने के बाद उनमें क्या परिवर्तन आ गए। उन्होंने लिखा, "जैसे जैसे मेरा जाने का दिन निकट आता गया, कुछ खो जाने की भावना तीव्र होती गई। मैं मैक्सिको केवल ढाई वर्ष रहा किंतु ऐसा लगा जैसे मैं बचपन से ही वहां रह रहा था। मैंने कभी कोई निजी मित्र नहीं बनाए। मैक्सिको के लोगों का उल्लास जो अत्यधिक औपचारिकता से भरा हुआ था और जिसमें दिखावा और ढोंग नहीं था

मेरे स्वभाव से मेल नहीं खाता था। फिर भी इन सब बातों से मैं प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका कि यह अत्यंत सत्कारपूर्ण देश था। सरकार मेरी आशा से कहीं अधिक अनुपात में मेरे प्रति उस मामूली सेवा के लिए मैत्रीपूर्ण थी जो मैंने उनके अहसान की वजह से की थी और कई उन्नतिशील लोग मेरे साथ दया, स्नेह व सम्मान का व्यवहार करते थे। पूरे तौर पर यह एक संतोषजनक अनुभव था। एक तरह से मैक्सिको मेरे पुनर्जन्म का देश था। यह सच है कि वहां जाने से पहले मैं अपने आरंभिक जीवन के विचारों व आदर्शो से असंतुष्ट महसूस करने लगा था। किंतु मेरे मैक्सिको रहने के समय ही नया ध्येय स्पष्ट हुआ और एक बेजान अतीत के प्रति असंतोष के स्थान पर मेरे अंदर विश्वास पैदा हो गया। भविष्य साफ दिखने लगा। यह मात्र राजनैतिक तथा क्रांतिकारी आदर्शों का परिवर्तन ही नहीं था बल्कि इससे जीवन के प्रति मेरा एक नया दृष्टिकोण बना,मेरे दिमाग में क्रांति आ गई, एक दार्शनिक क्रांति जो कहीं समाप्त नहीं होती। जीवन के प्रति दृष्टिकोण में आधारभूत परिवर्तन आ जाने से ही मैं अपने पुनर्जन्म की भूमि से भावनात्मक लगाव को भूल सका।''[6] इसी के बाद राय ने लिखा, ''मैंने पुनर्जन्म की भूमि को बौद्धिक रूप से स्वतंत्र व्यक्ति की तरह छोड़ दिया, यद्यपि एक नई आस्था के साथ। मैं आर्थिक मुक्ति और सामाजिक न्याय के बिना राजनैतिक स्वतंत्रता में विश्वास नहीं रखता हूं। किंतु मैने मौलिक स्वतंत्रता का महत्व भी समझा है—सब रूढ़ियों और सत्ता के बंधनों से मुक्ति के लिए किए जाने वाले प्रभावशाली संघर्ष के लिए एक शर्त है।''

4

कमिन्टर्न के साथ

राय के लिए मास्को की यात्रा तीर्थयात्रा के समान थी। उस समय तक वे आस्थावान साम्यवादी बन चुके थे। मास्को को उन्होंने उस विश्व क्रांति का निर्देशक केंद्र माना था जिसके लिए उन्होंने जीवन अर्पित कर दिया था। वे भारतीय क्रांति के लिए कार्य करने को उत्सुक थे। उन्हें आशा थी कि यह काम विश्व क्रांति के मास्को स्थित केंद्र के मार्ग निर्देशन में और अच्छे ढंग से हो सकेगा। वे वहां अपने को विश्व क्रांति की सेना में भरती करने जा रहे थे। उन दिनों प्रथम विश्वयुद्ध के अंत के तुरंत बाद और रूस में क्रांति के सफल हो जाने से रूस की ओर खिंचनेवालों में राय अकेले नहीं थे तथा क्रांति की पुण्यभूमि को अपनी सेवा अर्पित करने को तैयार थे। सैकड़ों महान लोगों जिन्होंने सामाजिक क्रांति में अपने को लगा दिया था, के अंदर यह तीव्र इच्छा जग गई थी और वे मास्को की ओर उन्मुख हो रहे थे। किंतु उन्होंने जो देखा उससे कई लोग निराश हुए बिना भी नहीं रहे। बाद के वर्षों में अजीब-से हालात पैदा हुए जिनके कारण वे साम्यवादी आंदोलन से अलग हो गए। राय भी निराश हुए और साम्यवादियों से अलग हो गए। पर यह बहुत बाद में करीब दस वर्ष के उपरांत हुआ।

उन दिनों रूस जाना आसान नहीं था और यूरोप में एक देश से दूसरे देश में यात्रा करना भी कठिन था। युद्ध के समय के प्रतिबंध अब भी लागू थे। फलतः ऐसी व्यवस्था की गई कि कमिन्टर्न की दूसरी कांग्रेस के प्रतिनिधि बर्लिन में इकट्ठे हों और वहां से उन्हें रूस भेजा जाए। इसी के अनुसार राय 1919 के अंत में बर्लिन पहुंच गए।[1] इससे पहले वे स्पेन पहुंचे और बोरोडिन के आदेशानुसार सोशलिस्ट पार्टी, अराजकतावादी एव श्रमिक संघवादी दलों के नेताओं से उस दूसरी कांग्रेस में भाग लेने को राजी करने के लिए मिले। अप्रैल 1919 में मास्को में हुई पहली कांग्रेस में जिसमें कमिन्टर्न की स्थापना हुई थी सबका प्रतिनिधित्व नहीं था। यूरोप के समाजवादी दलों की उपस्थिति नगण्य थी। यह तय हुआ कि दूसरी कांग्रेस में ज्यादा प्रतिनिधि आएं। राय को यह कार्य सौंपा गया कि वह स्पेन के

साम्राज्यवादी दलों का समर्थन प्राप्त करें। राय को उनके मास्को जाने का प्रबंध होने से पहले चार महीने से ज्यादा बर्लिन में रहना पड़ा। इस समय का उपयोग उन्होंने जर्मनी की दशा समझने में तथा समाजवादी व साम्यवादी पार्टियों के नेताओं से सैद्धांतिक व व्यावहारिक समस्याओं पर विचार-विमर्श करने में किया। कैसर के साम्राज्यवादी शासन का तख्ता राय के पहुंचने से पहले ही पलट चुका था। आतंक, अराजकता व गृहयुद्ध के कुछ महीनों बाद समाजवादी जनतांत्रिक पार्टी सत्ता में आ गई थी। लेकिन यह सत्ता निर्विरोध न थी। राय के बर्लिन में रहते समय ही सेना ने सत्ता को उलटने की कोशिश की। इतिहास में यह विद्रोह नाप पुश के नाम से प्रसिद्ध है, जो मार्च 1920 में हुआ। सेना के एक भाग ने बर्लिन में प्रवेश किया और शहर पर कब्जा कर लिया। सरकार डर के मारे भाग गई। परंतु मजदूरों ने स्थिति को संभाल लिया। उन्होंने एक आम हड़ताल की। यह संपूर्ण हड़ताल थी जिससे पूरे शहरों में काम ठप्प हो गया। इसका सामना करने में असमर्थ होने पर सेना बाहर निकल गई ओर सरकार बच गई। राय ने अपने होटल की खिड़की से सेना को प्रवेश करते भी देखा और जाते भी देखा। यह उनके सामने श्रमिक वर्ग की शक्ति का प्रदर्शन था।

जर्मनी की समाजवादी जनतांत्रिक पार्टी यूरोप की समाजवादी पार्टियों में सबसे अच्छी और संगठित पार्टी थी। इसको शक्तिशाली व सुसंगठित श्रमिक संघ आंदोलन का जबरदस्त समर्थन प्राप्त था। इसके नेता अनुभवी व परिपक्व विचारक थे। ये सब मार्क्सवादी थे परंतु उन्होंने जिस ढंग से कार्ल मार्क्स की बातों का अर्थ लिया था, वह उन बोलशेविकों से, जिन्होंने रूस में सत्ता प्राप्त की थी बिल्कुल भिन्न था। मार्क्सवादियों के रूप में उनका विश्वास था कि सामाजिक क्रांति होकर रहेगी और वे श्रमिकों की मुक्ति व स्वतंत्रता और समानता की नई सामाजिक व्यवस्था के आदर्श की कल्पना करते रहते थे। वे समाजवाद के निश्चित रूप से धीर धीरे बढ़ने में विश्वास करते थे और हिंसात्मक कार्यवाहियों व हथियारबंद विद्रोह के विरुद्ध थे।

सत्ता में आने के बाद उन्होंने कोशिश की कि देश को समाजवाद की ओर ले जाया जाए। परंतु उन्हें मजबूत ताकतों का सामना करना था, एक तरफ सैन्यवादी शक्ति थी जो साम्राज्यवादी राज्य का पुनर्स्थापन चाहती थी और दूसरी ओर साम्यवादी तथा दूसरी शक्तियां थीं जो सभी पुरानी संस्थाओं व निहित स्वार्थों को बिल्कुल मिटा देना चाहती थीं और समाजवाद की ओर जबरन जाना चाहती थीं। राय के जर्मनी में रहने के समय इन सब दलों में सैद्धांतिक व व्यावहारिक बातों पर उग्र वाद-विवाद चल रहा था। उनकी सहानुभूति स्पष्ट रूप से साम्यवादी पक्ष के प्रति थी पर उनके अंदर इतनी बुद्धि थी कि वे सब की सुनें और इससे जो मार्क्सवाद उन्होंने मैक्सिको में सीखा था उसे वे और भी अच्छी तरह से समझ सकें। समाजवादी नेताओं की सहृदयता ने उन्हें बहुत प्रभावित किया। अपने बर्लिन रहने के समय

उनमें से कइयों से वे मिले। उनमें से प्रमुख थे बर्नस्टीन, कौट्सकी तथा हिलफरडिंग।

राय साम्यवादी नेताओं से बाद में मिले क्योंकि या तो वे कारावास में थे या छुपे हुए थे और जो उन्हें, उनसे मिलाने वाला था, उसे भी पुलिस ने पकड़ लिया था, किंतु संपर्क शीघ्र ही स्थापित हो गया। वे जर्मनी की साम्यवादी पार्टी के प्रमुख नेताओं से मिलने में समर्थ हो गए। उनका उन लोगों के साथ न केवल मार्क्सवाद पर बल्कि जर्मनी तथा अन्य यूरोपीय देशों की समसामयिक राजनैतिक व सामाजिक स्थिति पर विचार-विमर्श हुआ। इन विमर्शों से राय का ज्ञान और बढ़ा और साम्यवादी सिद्धांत व प्रयोग उनके लिए और भी बोधगम्य हो गए। जर्मन साम्यवादी नेताओं में से हैनरिच बैंडलर एवं अगस्त थालहीसंर से उनकी स्थायी मित्रता हो गई। यह मैत्री सारे जीवन बनी रही । यह निजी व राजनैतिक दोनों ही थी। ये तीनों कमिन्टर्न के भीतर भी साथ रहे तथा बाहर भी।

राय 1920 में अप्रैल के मध्य के बाद मास्को पहुंचे। वहां उनकी ख्याति उनसे पहले ही पहुंच चुकी थी। बोरोडिन उन्हें वहां लेने मौजूद थे और जहां वे स्वयं रह रहे थे वहीं उन्होंने उनके ठहरने का भी प्रबंध किया। उसी शाम विदेशी मामलों के कमिसार तथा उप-कमिसार से उनका परिचय कराया गया। दोनों ही ने भारत समेत पूर्वी देशों में क्रांतिकारी कार्यों को संगठित करने के बारे में बातचीत की। कुछ समय तक यह आशा बनी रही कि भारत में अफगानिस्तान को गढ़ बनाते हुए क्रांतिकारी कार्यवाहियों का संगठन किया जा सकता है और यह भी सुझाव दिया गया कि राय को वहां का राजदूत नियुक्त कर दिया जाए। पर इस दिशा में कोई प्रगति नहीं हुई क्योंकि शीघ्र ही वहां की राजनैतिक स्थिति बदल गई और राजा अमानुल्ला जो कुछ समय ब्रिटिशों के विरुद्ध था, अब उनका हिमायती बन गया। परिणामस्वरूप जिन भारतीय क्रांतिकारियों ने काबुल में शरण ली थी, उनसे चले जाने के लिए कह दिया गया। ये बातें तुरंत नहीं हुईं। कुछ समय तो लगा। परंतु कमिन्टर्न को काबुल से कार्यकलाप चालू रखने का इरादा छोड़ना पड़ा। तथापि पूर्वी देशों में काम के लिए राय की सेवाओं को इस्तेमाल करने का इरादा नहीं छोड़ा गया। इस बारे में बाद में बताया जाएगा।

अगले कुछ दिनों में राय, कमिन्टर्न के सभी प्रमुख नेताओं से मिले, जिनमें लेनिन, जिनोववि और ट्राट्सकी भी शामिल थे। स्टालिन उस समय विशेष महत्व के न थे और न ही वे मास्को में थे। राय उनसे एक वर्ष बाद मिले। लेनिन से मिलने से पूर्व राष्ट्रीय व उपनिवेशवादी समस्याओं पर लिखे लेनिन के एक निबंध की प्रतिलिपि राय को दी गई। इस प्रतिलिपि के पहले पृष्ठ के बाएं कोने में लिखा था, "कामरेड राय की आलोचना व सुझावों के लिए"। स्वाभाविक था कि राय ने बहुत सम्मानित महसूस किया क्योंकि 'समय के सबसे महान पुरुष' जैसे लेनिन उनके लिए थे, वैसे ही लेनिन ने इस काम के लिए उन्हीं को ठीक

समझा और महत्वपूर्ण प्रश्न पर उन्हीं के सुझाव मांगे। वे लेनिन से उसी दिन मिले। पहली बात जो लेनिन ने कही, जैसा राय ने लिखा है, कि "तुम तो बहुत छोटे हो। मैं तो पूरब के किसी सफेद दाढ़ी वाले ज्ञानी की आशा कर रहा था।" यह बात मजाक में की गई। राय ने अपने 'संस्मरणों' में लेनिन से पहली भेंट का स्मरणीय चित्रण किया है। मुलाकात में लेनिन ने राय के मैक्सिको में किए गए काम की प्रशंसा की और कहा कि उपनिवेशों व अर्द्ध-उपनिवेशों में यह काम साम्यवादी कार्य का मार्गदर्शन कर सकता है। लेनिन ने राय से उन निबंधों पर जो उन्होंने उन्हें दिए थे राय प्रकट करने को कहा। इसके बाद राय की लेनिन से कई बार उनपर बहस करने के लिए मुलाकातें हुई।

कमिन्टर्न की दूसरी कांग्रेस मास्को में 23 जुलाई से 7 अगस्त तक 1920 में हुई। कांग्रेस का उद्घाटन लेनिनग्राड में समारोहपूर्वक हुआ जहां सभी प्रतिनिधि विशेष रेलों द्वारा ले जाए गए। राय और उनकी पत्नी ईवलिन राय ने मैक्सिको की कम्युनिस्ट पार्टी के प्रतिनिधि के रूप में सरकारी तौर पर भाग लिया। भारत का प्रतिनिधित्व दो अन्य व्यक्तियों, अबनी मुकर्जी व एम.पी.बी.टी. आचार्य द्वारा किया गया। लेकिन सभी मामलों में राय को ही भारत का प्रतिनिधि माना गया। वे उसी हैसियत से कांग्रेस में बोले और उसी हैसियत से उनका भिन्न भिन्न समितियों में चुनाव भी हुआ। पहले अधिवेशन के समाप्त होने पर कई आयोग चुने गए। राय को राष्ट्रीय व उपनिवेशीय आयोग में चुना गया जो उनमें सबसे महत्वपूर्ण था।

'राष्ट्रीय व उपनिवेशीय प्रश्न' पर लेनिन के निबंध पर वाद-विवाद अधिकतर राष्ट्रीय व उपनिवेशीय आयोग में हुआ। लेनिन के निबंध के कुछ अंशों पर राय का गंभीर मतभेद था। राय का मत था राष्ट्रीय मध्यवर्ग केवल कुछ रियायतें व अधिकार प्राप्त करने के लिए उत्सुक है और वे साम्राज्यवाद के विनाश के पक्ष में नहीं हैं। राय ने यह विचार उनके आपस के वाद-विवाद के समय व्यक्त किए। फिर भी अकेले में असम्मति प्रकट करना एक बात थी परंतु सब लोगों के सामने आयोग की बैठक में विरुद्ध कहना दूसरी बात थी और वह भी लेनिन जैसे ऊंचे दर्जे व प्रतिष्ठित व्यक्ति के विरुद्ध। इसके लिए बहुत साहस व सैद्धांतिक निष्ठा की आवश्यकता थी। राय ने साम्यवादी नेताओं की पहली अंतर्राष्ट्रीय सभा में लेनिन के साथ बहस में खुलकर हिस्सा लिया था। परंतु लेनिन सहृदय और उदार व्यक्ति थे। उन्होंने राय को आश्चर्य में डाल दिया, यह सुझाव देकर कि राय वैकल्पिक निबंध लिखें। कुछ अनुनय विनय के बाद राय ने पूरक निबंध लिखना स्वीकार किया। बाद में लेनिन ने आयोग से कहा कि दोनों ही निबंधों पर जबकि लेनिन ने 'मध्यवर्गीय जनतंत्री' के बजाय 'राष्ट्रीय क्रांतिकारी' शब्द रखना स्वीकार किया। ये दोनों निबंध[2] फिर स्वीकार कर लिए गए। लेनिन के मुख्य तथा राय के पूरक निबंध के आधार पर कांग्रेस ने आयोग की सिफारिश उसी रूप में स्वीकार कर ली।

लेनिन और राय में विवाद का विषय था कि उपनिवेशवादी देशों को साम्यवादी पार्टियां राष्ट्रवादी मध्यवर्ग और उसकी संस्थाओं को किस प्रकार की मदद दें। लेनिन का कहना था कि 'मध्यवर्गीय जनतंत्र' से अल्पकालीन समझौता कर लिया जाए जबकि श्रमिक वर्ग का आंदोलन चालू रहे। राय ने जोर दिया कि कमिन्टर्न का सारा ध्यान श्रमिकों व किसानों के स्वतंत्र आंदोलन को चलाने पर केंद्रित रहना चाहिए। लेकिन तब क्या करना होगा यदि ऐसे आंदोलन मौजूद न हों। अधिक समझदार लेनिन जानते थे कि राष्ट्रीय क्रांतिकारी आंदोलन के साथ काम करके वे आंदोलन शुरू हो जाएंगे। नए नए साम्यवादी होने के नाते भारत के श्रमिक आंदोलन की शक्ति व आत्मनिर्भरता के बारे में राय ज्यादा अच्छी तरह सोचते थे। लेनिन के साथ विचार-विमर्श के बाद अपने द्वारा बनाई गई तरकीब व तरीकों के ठीक होने का अधिक विश्वास राय को हो गया।

कांग्रेस द्वारा दोनों निबंधों को स्वीकार किए जाने के बाद राय तथा लेनिन व कमिन्टर्न के बाद अन्य नेताओं में सैद्धांतिक अथवा व्यावहारिक रूप से कोई मतभेद नहीं रहा। जो काम भारत में साम्यवाद का विकास करने के लिए उन्होंने किया उसे कमिन्टर्न ने पूरा समर्थन दिया व अनुमोदन किया। बाद में 1928 में उनके मतभेद हो गए–विशेष रूप से इसलिए कि कमिन्टर्न ने लेनिन के विचारों को अस्वीकार कर दिया और एकदम वामपंथी मार्ग पर चलना आरंभ कर दिया।

लेनिन और राय के विचारों को अपनाकर भी, उपनिवेशी तथा अर्द्धउपनिवेशी देशों में राष्ट्रीय व साम्यवादी शक्तियों को मिलाने की समस्या का समाधान नहीं हुआ। यह समस्या बार बार सामने आती रही और बार बार कमिन्टर्न को इस पर विचार करना पड़ा। वास्तव में इस बारे में अंतिम निर्णय लेना असंभव था। यह समस्या इन शक्तियों के संबंध पर निर्भर करती थी और संबंध समय समय पर बदलता रहता था और अलग अलग देशों में अलग अलग तरह का था। चीन की क्रांति की भिन्न भिन्न स्थितियों में बहुत बार इन दो निबंधों का हवाला दिया गया। स्टालिन ने मई 1927 में दो बार इनका जिक्र किया और दावा किया कि स्थिति के लिए राय का पूरक निबंध लेनिन के निबंध से अधिक संगत है। यह विवाद समय समय पर उठता रहा और तब तक कोई अंतिम निर्णय नहीं लिया गया जब तक कि 1943 में स्टालिन ने कमिन्टर्न को समाप्त न कर दिया। राय ने अपनी किताब "चीन में मेरे अनुभव" में लिखा है, "विवाद का कोई निश्चित फैसला नहीं हुआ किंतु सामान्य सिद्धांतों के बारे में समझौता हुआ कि साम्यवादी अंतर्राष्ट्र उपनिवेशी लोगों को उनके स्वतंत्रता संघर्ष में मदद दें और उपनिवेशी देशों की दलित व शोषित जनता के क्रांतिकारी संगठनों द्वारा काम अच्छे ढंग से हो सकता है। राष्ट्रवादी अभिजातवर्ग के प्रति रवैये की ठीक रूपरेखा नहीं खींची गई। उन्हें उपनिवेशी लोगों को ही अंग मानकर सहायता दी जानी थी, किंतु मदद का क्या रूप होगा व

किस हद तक होगी यह राष्ट्रीय स्वतंत्रता के संघर्ष में उनकी स्थिति देखते हुए भावी अनुभवों के आधार पर तय किया जाएगा।"[3]

दूसरी कांग्रेस ने राय की स्थिति को कमिन्टर्न में सुदृढ़ कर दिया। वह साधारण प्रतिनिधि के रूप में मास्को गए थे। परंतु उनका लेनिन से वाद-विवाद तथा मार्क्सवादी सिद्धांत व व्यवहार पर गहरा ज्ञान जो उन्होंने लेनिन के साथ हुई बहस में तथा कांग्रेस के अन्य नेताओं के साथ हुई चर्चाओं में प्रदर्शित किया था, उससे वह अंतर्राष्ट्रीय साम्यवादी आंदोलन के प्रमुख नेता बन गए। इस पद को प्राप्त करना एक बड़ी उपलब्धि थी और उनकी स्थिति तब तक उत्तरोत्तर सुदृढ़ होती गई, जब तक कि 1928 में अचानक ही उसे एक धक्का न लगा।

कांग्रेस के समाप्त होने पर राय कमिन्टर्न की कार्यकारिणी समिति में चुने जाने वाले थे। उन्होंने इस सम्मान को स्वीकार करने से मना कर दिया क्योंकि उन्हें कांग्रेस के बाद पूरब में जाना था और 'शायद कभी न लौटने के लिए'। उन्हें पूरब में विशेष रूप से भारत में यह क्रांति ले जाने का कार्य सौंपा गया। उन्हें विश्व क्रांति का दूसरा मोर्चा खोलना था। यह काम उनकी पसंद का था। इसे उन्होंने जोश-खरोश से करना शुरू कर दिया।

इस समय तक राय का भारत की क्रांति के बारे में विचार बिल्कुल बदल गया था। अपने इस नए विचार को उन्होंने 'संस्मरणों' में इस प्रकार लिखा है, "मेरे इस नए विश्वास के अनुसार, क्रांति एक आवश्यकता थी। क्रांति में कोई भी व्यक्ति विशेष अनिवार्य नहीं था। नए सामाजिक तत्वों की परिपक्वता ही क्रांति की शर्त थी। इन तत्वों का परिपक्व होना क्रांति की अनिवार्य स्थिति थी। जब तक वह आधारभूत स्थिति नहीं बनती कोई भी हथियार बंद विद्रोह नहीं करना चाहिए क्योंकि वह निश्चित रूप से असफल होगा। पुरानी स्थापित व्यवस्था के विरोधी सामाजिक तत्वों को धीरे धीरे उकसाना चाहिए और क्रांति की सेना में भर्ती करना चाहिए। इसके बाद ही आजादी के लिए लड़ने को तैयार सिपाहियों को हथियार देने का प्रश्न उठता है। हमारी क्रांति के बारे में पुरानी धारणा उल्टी गंगा बहाने वाली बात थी। हथियार देना ही एकमात्र महत्व का कार्य था और जब उनको प्राप्त करने का अवसर सामने आ गया, हमें विश्वास हो गया कि क्रांति निकट ही है। हमने लोगों को हथियार चलाने के लिए तैयार करने की समस्या पर ध्यान दिया। गुप्त पार्टी के सदस्यों की संख्या क्रांति की सेना बनाने के लिए पर्याप्त न थी।"[4]

राय ने 'क्रांति की सेना' बनाने का काम शुरू कर दिया।

5

भारत में साम्यवाद

दूसरी कांग्रेस के कुछ ही महीनों बाद राय पूरब में क्रांति फैलाने ताशकंद पहुंच गए। पूरब में केवल भारत ही नहीं वरन रूस का एशियाई क्षेत्र तथा मध्य एशिया का तुर्की से अफगानिस्तान तक फैला हुआ विस्तृत क्षेत्र भी शामिल था। उन दिनों इन सभी क्षेत्रों में एशियाई रूस समेत काफी उथल-पुथल मची हुई थी। यह एक विस्तृत क्षेत्र था। यहां के निवासी बहुत पिछड़े हुए लोग थे। वहां ज्यादातर लोग मुसलमान थे और क्रांति के प्रति उनका समर्थन उनकी धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुंचाए बिना प्राप्त करना था। क्रांति के परिणामस्वरूप नया तुर्की गणतंत्र स्थापित हो चुका था किंतु लोगों पर इसका प्रभाव बहुत ही मामूली था। वहां कई खानाबदोश जातियां थीं और उनके सरदार अभी तक नियंत्रण में नहीं आए थे। क्रांति के विरोधी विशेष रूप से ब्रिटिश साम्राज्यवाद के दुश्मन उन्हें नए गणतंत्र के विरुद्ध भड़काते थे जिससे वे गडबड़ी करते रहे। बोलशेविकों का मुसलमान न होना तथा धार्मिक न होना ही उकसाने का आधार था।

ताशकंद रवाना होने से पहले राय साम्यवादी अंतर्राष्ट्र की कार्यकारिणी समिति द्वारा स्थापित उस छोटे ब्यूरो के सहयोजित सदस्य थे जो माली ब्यूरो कहा जाता था। उनको केंद्रीय एशियाई ब्यूरो का भी सदस्य बनाया गया था। सोकोल्निकोव और सफ़ारोव, दो रूसी जो सरकार में व पार्टी में प्रमुख थे वे भी ब्यूरो के सदस्य थे। वे ताशकंद में ही रह रहे थे पर चूंकि वे दूसरे कार्यों में व्यस्त थे, ब्यूरो के काम की सारी जिम्मेदारी राय को ही दी गई।

राय ताशकंद को दो गाड़ियों से भरे तरह तरह के हथियारों व एक बड़े खजाने के साथ रवाना हुए। जब राय चले थे तो उस समय इरादा था कि अफगानिस्तान को गढ़ बनाया जाए और हथियारों व खजाने का इस्तेमाल सीमांत जातियों को काबू में करने के लिए किया जाए और उसके द्वारा भारत के क्रांतिकारी तत्वों से संपर्क स्थापित किया जाए। बाद में यह योजना अफगानिस्तान की सरकार का सहयोग न मिलने के कारण समाप्त कर दी गई। पर अंततः

वे हथियार व सैनिक अफसर जिन्हें वे साथ लाए थे अंग्रेजों द्वारा भड़काई बगावतों को दबाने तथा भारतीय मुहाजिरों को सैनिक प्रशिक्षण देने में उपयोगी सिद्ध हुए।

ताशकंद में जीवन निर्वाह की स्थितियां बहुत कठिन थीं। क्रांति के शुरू होने के बाद जार के अफसर तथा दूसरे उच्चवर्गीय रूसी वहां से भाग गए थे। लेकिन भागने से पहले वे जितना कर सकते थे उतना विध्वंस उन्होंने किया। कई इमारतें रहने के योग्य नहीं थीं क्योंकि पानी के नल तोड़ दिए गए थे। फर्नीचर और बिजली के तार भी नष्ट कर दिए गए थे। राय को ऐसी ही इमारत रहने व दफ्तर बनाने के लिए मिली। यह बोखारा एमीर के प्रतिनिधि का निवास स्थान था। पर जब राय ने यहां रहना शुरू किया यहां कोई भी फर्नीचर या फिटिंग नहीं थी बस कालीनों के ढेर थे। जाड़ों में ताशकंद में कड़ाके की सर्दी पड़ती थी। गर्म करने का कोई भी प्रबंध नहीं किया जा सकता था क्योंकि वहां लकड़ी की बेहद कमी थी, खाद्य पदार्थ भी उतने ही दुर्लभ थे। यह जैसा राय ने लिखा है, "बहुत कठिनाइयों का जीवन" था।

बोखारा और खीवा उस क्षेत्र में दो छोटे राज्य थे जिन्हें ब्रिटिश सेना रूसियों के विरुद्ध प्रचार करने तथा उनकी कार्यवाहियों का विरोध करने के लिए इस्तेमाल कर रही थी। क्रांति के बाद रूसी सरकार ने बोखारा के एमीर तथा खीवा के खान को स्वतंत्रता प्रदान कर दी थी। लेकिन फिर भी वे ब्रिटिश खेल खेलते जा रहे थे। राय को इस समस्या का निवारण करना था। उनके रास्ते की सबसे बड़ी कठिनाई मुसलमान जनता की कट्टर धार्मिक भावनाएं थीं। इसके लिए उन्होंने कुरान व दूसरी इस्लामी धार्मिक पुस्तकें पढ़ीं। इस बात का ध्यान रखते हुए कि लोगों की धार्मिक भावनाओं को ठेस न पहुंचे उन्होंने क्रांति को इस आधार पर जायज बताना शुरू किया कि इस्लाम में भी बराबरी की बात कही गई है। इससे लोगों की आशंकाएं दूर हो गईं। एमीर और खान दोनों को सैनिक कार्यवाही से दबा दिया गया और क्रांति को बोखारा तथा खीवा में फैलाया गया।

इसी समय खबर मिली कि भारतीय लंबी तादाद में उस क्षेत्र में घुस गए हैं और वे खिलाफत के लिए लड़ने तुर्की जा रहे हैं। ये लोग मुहाजिर थे जो अपने धार्मिक नेताओं तथा खिलाफत आंदोलन के नेताओं के आह्वान पर भारत छोड़कर आए थे। उनकी संख्या का अंदाजा तीस और पचास हजार के बीच था। उनमें से कुछ को तुर्कीमन बागियों ने पकड़ लिया था और उनसे बहुत बुरा व्यवहार किया था। बोखारा में खबर मिलने के बाद राय ने उन्हें बचाने के लिए लाल सेना की टुकड़ी भेजी। बचाव के बाद उन्हें बोखारा ले जाया गया जहां राय ने उनसे बातचीत की। उनमें से अधिकतर लोग कट्टर धार्मिक थे जो तुर्की जाने के लिए उत्सुक थे। कुछ ही ऐसे थे जो शिक्षित थे। वे राय के सैन्य प्रशिक्षण के सुझाव से आकर्षित हुए और फिर उनके साथ ताशकंद जाने को भी तैयार हो गए। वे करीब पचास थे।

ताशकंद में राय को जो मुहाजिर उनके साथ आए थे उनके रहने, खाने का प्रबंध करना

पड़ा। जिस जगह वे रहने लगे थे वह 'इंडिया हाउस' के नाम से जानी जाने लगी। उन्हें उनके लिए एक सैनिक व राजनैतिक स्कूल भी खोलना पड़ा। सैनिक स्कूल उन उपकरणों से शुरू किया गया जो राय अपने साथ लाए थे। रूसी अफसर जो उन उपकरणों के साथ आए थे, उनके प्रशिक्षक बने। ब्रिटिश सरकार के कड़े विरोध के परिणामस्वरूप स्कूल बंद करना पड़ा। रूसी सरकार को यह मानना पड़ा ताकि मार्च 1921 में हस्ताक्षर की गई व्यापार संधि में बाधा न पड़े। स्कूल केवल 1920 से मई 1921 तक चला। वही हाल राजनैतिक स्कूल का हुआ। दूसरी घटना उस साम्यवादी आंदोलन की दृष्टि से अधिक महत्व की थी जो बाद में भारत में फैल गया। इस स्कूल ने आंदोलन को कई सक्रिय कार्यकर्ता दिए। उनमें से मुख्य थे—शौकत उस्मानी, रफीक अहमद, अकबर शाह, फज़ल इलाही कुरबान, अब्दुल मजीद और फिराजुद्दीन मंसूर। उनमें से अधिकतर भारत लौटते ही गिरफ्तार कर लिए गए क्योंकि वे पेशावर साम्यवादी षड्यंत्र में फंस चुके थे और उन्हें लंबे समय के लिए जेल हो गई थी। वे रिहा होने पर साम्यवादी पार्टी में शामिल हो गए। शौकत उस्मानी कानपुर व मेरठ दोनों कांग्रेसी केसों में फंसे थे।

दूसरी महत्वपूर्ण घटना जो ताशकंद में घटी वह थी भारत की साम्यवादी पार्टी की स्थापना। यह अक्तूबर 1920 में बनाई गई। राय को यह पसंद नहीं था कि भारत के बाहर कोई पार्टी बनाई जाए जबकि देश के अंदर कोई भी साम्यवादी कार्य नहीं हो रहा था। किंतु उन्हें अपने सहयोगियों के जोर देने पर राजी होना पड़ा।

पार्टी की शुरूआत सात सदस्यों से हुई। जब पार्टी के मास्को जाने के बाद कुछ और सदस्य जुड़ गए तब भारत में पार्टी बनने के बाद यही पार्टी का विदेशी दफ्तर हो गया। लेकिन राय को छोड़कर पार्टी का कोई महत्व नहीं था।

1921 के आरंभ में राय को मास्को जाना पड़ा। उनको भारतीय क्रांतिकारियों के एक बड़े प्रतिनिधिमंडल से बर्लिन में मिलना था जो यह चाहते थे कि कमिन्टर्न उन्हें वह एकमात्र माध्यम समझे जिसके द्वारा भारतीय क्रांति को मदद पहुंचाई जाए। इसके नेता सरोजिनी नायडू के भाई वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय थे और मंडल में अन्य लोगों के अतिरिक्त भूपेन्द्रनाथ दत्त और खानखोजे भी थे। उन्होंने राय के प्रतिनिधि होने का विरोध किया जिसपर राय ने सीधा जवाब दिया कि वे किसी का भी प्रतिनिधित्व नहीं कर रहे हैं। उन्होंने उनके साथ काम करने का प्रस्ताव रखा यदि वे कमिन्टर्न का नेतृत्व स्वीकार कर लें और अपना मुख्य कार्यालय मास्को बनाएं।

प्रतिनिधि मंडल मास्को में दो महीने से अधिक रहा और कमिन्टर्न के कई नेताओं से मिला, परंतु बातचीत का कुछ भी नतीजा नहीं निकला क्योंकि इनकी हैसियत मुख्यतया राष्ट्रवादी की थी। कमिन्टर्न में राय की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

करीब इसी समय यह महसूस किया गया कि राय को ताशकंद में रखने का कोई लाभ नहीं है क्योंकि अफगानिस्तान के विरोध के कारण उत्तर-पश्चिम की ओर से भारत तक नहीं पहुंचा जा सकता था। उन्हें मास्को वापिस बुला लिया गया। ताशकंद के स्कूल व केंद्र बंद किए गए और उनसे कहा गया कि वे मास्को से ही अपना काम भारत में जारी रखें। बाद में उनका कार्यालय बर्लिन में स्थापित किया गया, क्योंकि यह अनुभव किया गया कि वहां से भारत में संपर्क स्थापित करने व उन्हें कायम रखने में ज्यादा सुविधा है। सभी निर्णय राय की पूर्ण सहमति के बाद ही लिए गए।

राय ने मास्को में रहने का यह समय अपनी सबसे महत्वपूर्ण किताब "इंडिया इन ट्रांजिशन" लिखने में लगाया। यह उनका मार्क्सवादी दृष्टि से भारत की स्थिति का पहला विश्लेषण है। यह अंग्रेजी में लिखी गई पर तुरंत ही इसका रूसी, जर्मन तथा अनेक दूसरी भाषाओं में अनुवाद कर दिया गया। यूरोप व अमेरिका में यह बहुत बिकी। भारत में इसका प्रवेश निषिद्ध कर दिया था परंतु बड़ी संख्या में इसकी प्रतिलिपियां वहां से चोरी-छिपे यहां पहुंच गईं और बुद्धिजीवियों के बीच बड़ी उत्सुकता से पढ़ी गईं। इस किताब से उन युवकों को विचार करने के लिए बहुत उत्तेजक सामग्री मिली जो गांधीवाद और समाजवाद के बीच भटक रहे थे। इसका भारत में साम्यवाद के विकास पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। इस किताब में राय के उसी दृष्टिकोण के ऐतिहासिक व सांख्यकीय प्रमाणों को विस्तारपूर्वक लिखा गया था जो उन्होंने दूसरी कांग्रेस में लेनिन के साथ हुई बहस में रखा था। यह उस बड़े साहित्यिक कार्यक्रम का एक भाग था जिसकी उन्होंने कल्पना की थी। वह ब्रिटिश साम्राज्यवाद के पतन और विनाश के बारे में लिखना चाहते थे। उन्होंने काफी सामग्री इकट्ठी कर ली थी और बर्लिन के एक प्रकाशक के पास सुरक्षित रखवा दी थी। यह हिटलर की लूटपाट का शिकार बन गई। राय भारतीयों का पूर्व वैदिक काल से आधुनिक काल तक का सामाजिक इतिहास लिखना चाहते थे। उनके आर्यों के तथा हिंदू सभ्यता की विशेषताओं के बारे में कुछ मौलिक विचार थे, यह अत्यंत दुखद बात है कि राजनीति में रहने के कारण वह वे पुस्तकें न लिख सके जो वह लिखना चाहते थे। अब भारत में उनका कार्य पत्रिकाओं, लेखों, घोषणापत्रों तथा निजी पत्रों के रूप में था जो उन्होंने कई लोगों को लिखे। वे कमिन्टर्न के पत्र 'इंगिकोर' में लेख लिख रहे थे। 1922 में उन्होंने 'वैनगार्ड' नामक अपना निजी पत्र निकाला। पुलिस के जाल से बचने के लिए इसका नाम समय समय पर बदला गया। इसके प्रकाशन का स्थान भी कई बार बदला गया। यूरोप में भी राय पुलिस की नजर से बचे हुए नहीं थे। एक बार उन्हें जर्मनी से निकाल दिया गया था और उन्हें फ्रांस में शरण लेनी पड़ी। फ्रांस में भी उनका अधिक समय तक स्वागत नहीं किया गया। उन्हें देश छोड़ना पड़ा और जर्मनी वापस जाना पड़ा जहां सौभाग्यवश इस बार उन्हें रहने दिया गया। इंग्लैंड जाना उनकी पहुंच से बाहर था

क्योंकि उनकी पुरानी क्रांतिकारी कार्यवाहियों के लिए जारी किए गए वारंट अब भी रद्द नहीं हुए थे। घोषणापत्र व खुले पत्र भी समय समय पर निकालते रहे। पर सबसे महत्वपूर्ण पत्र वे थे जो उन्होंने निजी रूप से क्रांतिकारी आंदोलन के सहयोगियों तथा श्रमिक संघों, किसान कार्यकर्ताओं और अपने सहयोगियों और अन्य लोगों को उनकी आशा आकांक्षाओं के प्रति सहानुभूति जाहिर करते हुए लिखे थे। इनमें से कई पत्र पुलिस के हाथों पड़ गए। उनकी नकल करने के बाद उन्हें उनके पतों पर भेज दिया गया। इनमें कुछ बाद में कांग्रेसी केसों में सामने रखे गए। राय के घोषणापत्र राष्ट्रीय कांग्रेस के दिसंबर 1921 में अहमदाबाद में हुए अधिवेशन से आरंभ हुए। वे कांग्रेस के गया, गुवाहाटी, काकिनाड़ा व बेलगाम अधिवेशनों में भी भेजे गए। उनमें गया अधिवेशन को, जिसका सभापतित्व सी. आर. दास ने किया था, भेजा गया घोषणापत्र सबसे महत्वपूर्ण था। दास की कही गई कुछ बातों ने राय के मन में ऊंची आशाएं भर दी थीं। उन्हें आशा थी कि वे असहयोग आंदोलन के असफल हो जाने पर जन आंदोलन की दिशा की ओर बढ़ेंगे। कार्यवाही की ठोस योजना सामने रखी गई। राय को आशा थी इसे स्वीकार कर लिया जाएगा परंतु इसका उल्टा ही हुआ। कांग्रेस धीरे धीरे वैधानिकतावाद की ओर बढ़ने लगी। राय देश में पूरे वर्ष होने वाली बातों की पूरी जानकारी रखते थे और घोषणापत्रों में आवश्यक परिवर्तन कर देते थे। यह चेतावनी दी गई कि जनता जो स्वराज इतना अधिक चाह रही है वह खादी या चरखों के रचनात्मक कार्यक्रमों द्वारा अथवा विधानपरिषद में प्रवेश करके नहीं मिल सकता और न नए नेतृत्व के समर्थन से। राय कांग्रेस को कभी भी अभिजातवर्गीय पार्टी नहीं समझते थे। उनके लिए यह अत्यंत शक्तिशाली जन आंदोलन था किंतु प्रतिक्रियावादी नेतृत्व इस पर थोपा गया था। उनके लेखों में कांग्रेस के बारे में बार बार यही बात कही गई थी। उनका यह विश्वास था कि कांग्रेस पर कब्जा करने के प्रयत्नों और साथ ही मजदूरों और किसानों के संगठनों व संघर्षों के द्वारा ही देश में साम्यवादी पार्टी बन सकेगी।

राय के किताबों, पेम्फ्लेटों और खतों के जरिए किए गए तगड़े प्रोपोगंडे का नतीजा था कि बंबई, मद्रास, कलकत्ता, लाहौर और इलाहाबाद जैसी जगहों पर 1922 तक छोटे छोटे साम्यवादी दल बन गए। कुछ साम्यवादी गुप्त प्रतिनिधि जैसे नलिनी गुप्ता, अबनी मुकर्जी, शौकत उस्मानी और चार्ल्स ऐशले भारत भी गए थे। किंतु ये दल छोटे छोटे थे और उनका एक-दूसरे से कोई संपर्क न था। राय ने मिलकर काम करने का सुझाव दिया और यह भी कहा कि अपने को गुप्त रखने के लिए वैधानिक संगठन बनाएं। वह चाहते थे डांगे समन्वयकर्ता बनें परंतु डांगे ने स्वीकार नहीं किया। उनकी इच्छा थी कि वे लोग कमिन्टर्न की चौथी कांग्रेस में भाग लें और बाद में विशेष सम्मलेन में जो यूरोप में कहीं होने वाला था, कार्य की योजना बनाने के लिए शामिल हों। कुछ पैसे भी भेजे गए। मुजफ्फर अहमद जाने को तैयार थे पर

डांगे व सिंगरावेलु चेट्टियार को यह प्रस्ताव पसंद नहीं आया। जाने का विचार त्याग दिया गया। किंतु गांधीवाद का असंतोष फैल रहा था। उत्सुक युवकों के लिए जो हजारों में जेल गए थे, चरखे या खादी के आदर्श में कोई आकर्षण न था। वे तेज गति से आगे बढ़ने वाला कार्यक्रम चाहते थे। वर्तमान आर्थिक मांगों के लिए मजदूरों व किसानों के संघर्षों के आधार पर जन-आंदोलन का राय का प्रोग्राम उन्हें अधिक आकर्षित कर रहा था। वे साम्यवाद के उद्देश्यों से भी आकर्षित हुए थे। परंतु राय यूरोप में थे और जिन लोगों से उन्होंने संपर्क किया था उनमें किसी में साहस नहीं था कि सामने आए और युवकों का नेतृत्व करे। अवसर आया लेकिन उससे लाभ नहीं उठाया गया।

इस बीच सरकार भारत के साम्यवादियों तथा राय व उनके सहयोगियों की गतिविधियों पर कड़ी नजर रख रही थी। इसे मालूम हुआ कि राय को असंतुष्ट कांग्रेसियों से, पुराने सहयोगियों से व कुछ अखबारों से धीरे धीरे समर्थन मिलता जा रहा था। कांग्रेस जानती थी कि अभी फौरन किसी बड़े साम्यवादी आंदोलन का खतरा नहीं है। पर इसने तय किया कि इससे पहले कि साम्यवाद की जड़ें देश में मजबूत हों इस पर तगड़ा प्रहार किया जाए। इसने एक षड्यंत्र का मामला चलाने का निर्णय किया और उन लोगों को गिरफ्तार करना शुरू किया जिनको सरकार जानती थी कि साम्यवादी आंदोलन में सक्रिय थे। पहले गिरफ्तार होने वाले शौकत उस्मानी थे,उसके बाद थे मुजफ्फर अली व नलिनी गुप्ता। डांगे मार्च 1924 में पकड़े गए और कानपुर साम्यवादी षड्यंत्र केस शुरू हो गया। सिंगरावेलु चेट्टियार अभियुक्तों की सूची में थे पर उन्हें बूढ़े होने व खराब स्वास्थ्य के कारण नहीं पकड़ा गया। बाद में उनके विरुद्ध आरोप समाप्त कर दिया गया। दो और अभियुक्त थे, राय व शर्मा। राय यूरोप में थे और शर्मा पांडिचेरी में जो ब्रिटिश-भारतीय कचहरियों के अधिकार क्षेत्र से बाहर था। राय को मुख्य षड्यंत्रकारी माना गया। षड्यंत्र में भाग लेने की कीमत उन्हें तब चुकानी पड़ी जब वह 1931 में भारत लौटे। अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप था कि उन्होंने आपस में तथा कमिन्टर्न के साथ मिलकर महाराजाधिराज को उनके भारत के आधिपत्य से च्युत करने का षड्यंत्र किया और यह इंडियन पेनल कोड की धारा 121 ए के अंतर्गत सजा योग्य अपराध है। कमिन्टर्न के प्रस्ताव व अन्य घोषणाएं तथा अभियुक्तों व राय के बीच हुआ पत्र व्यवहार षड्यंत्र के प्रमाण रूप में प्रस्तुत किए गए। अदालत ने जुर्म को साबित माना और अभियुक्तों को चार साल की बामशक्कत जेल की सजा दी गई।

अभियुक्तों ने जिस प्रकार से बचाव के पक्ष में तर्क दिए थे उससे राय संतुष्ट नहीं थे। बचाव कानूनी, तकनीकी और खेदसूचक रूप में किया गया था। सात वर्ष बाद जब उसी अपराध के लिए उन पर मुकदमा चलाया गया तब उन्होंने दिखाया कि दृढ़ साम्यवादी अपने बयान में कैसे निडर राजनैतिक तर्क पेश कर सकता है और उसे करना भी यही चाहिए।

कानपुर केस ने देश की साम्यवादी कार्यवाहियों को थोड़ा शांत कर दिया। राय को संचार के नए माध्यमों और कार्य को प्रोत्साहित करने व मार्गदर्शन देने का तरीका ढूंढ़ने में थोड़ा समय लगा। धक्का थोड़े समय का था, यह बात कानपुर के दिसंबर 1925 में साम्यवादी पार्टी को स्थापित करने के लिए किए गए सम्मेलन से साबित हो गई। संगठनकर्ताओं की योजना थी कि वैध साम्यवादी पार्टी बनाई जाए पर संगठनकर्ता निकाल बाहर किए गए और साम्यवादी असली साम्यवादी पार्टी बनाने में सफल हुए। राय के अनुसार इस घटना से उनका वह स्वप्न पूरा हो गया जो वे बहुत दिनों से देख रहे थे।

1925 में भारत में साम्यवादी कार्यवाहियों को निर्देश देने के माध्यम में परिवर्तन कर दिया गया। काम सी.पी.जी.वी. (ग्रेट ब्रिटेन की साम्यवादी पार्टी) को सौंप दिया गया। ग्रेट ब्रिटेन की साम्यवादी पार्टी रोजमर्रा के कामों की देखभाल करती थी जबकि राय मुख्यतः मार्गदर्शन करते थे। वैनगार्ड का निकलना जारी रहा और राय भारत में साम्यवादी नेताओं से पत्र-व्यवहार करते रहे। अपने पत्रों में युक्तियों व प्रणालियों की कई समस्याओं पर उनके साथ विमर्श किया। उनमें से एक थी मजदूरों और किसान पार्टियों की भूमिका जो पार्टियां देश में 1927 व 1928 में बन गई थीं। उस समय का बहुत महत्वपूर्ण पत्र 'एसेम्बली पत्र' है जिसे यह नाम इसलिए दिया गया क्योंकि यह केंद्रीय विधान सभा में 1928 में पढ़ा गया। इस समय राय 1927 के आठ महीनों के लिए चीन गए हुए थे और इसलिए भारतीय साम्यवादी पार्टी व राय के बताए मार्ग में कोई अंतर नहीं था। दोनों ही का विश्व तथा भारतीय स्थिति के बारे में एक दृष्टिकोण था जैसा कि राय की 'भारतीय राजनीति का भविष्य' तथा पाम दत्त (पाम दत्त ग्रेट ब्रिटेन की साम्यवादी पार्टी के मार्गदर्शक थे) की 'माडर्न इंडिया' नामक पुस्तकों से स्पष्ट है।

मतभेद छठी कमिन्टर्न कांग्रेस के बाद शुरू हुआ और राय का यह दुर्भाग्य था कि भारत में साम्यवाद पार्टी बनाने का जो भी काम उन्होंने हाथ में लिया था, वह कांग्रेस का असंगत विरोध करके उस समय नष्ट कर दिया गया जब पार्टी साम्राज्यवाद के विरुद्ध जन-आंदोलन का रूप ले रही थी। इससे राय के व कमिन्टर्न के रास्ते अलग हो गए। बाद के अध्याय में आगे की घटनाओं को वर्णित किया जाएगा।

6

चीन का लक्ष्य

1927 के आरंभ में कमिन्टर्न ने उस विचारधारा को कार्यान्वित करने के लिए राय को चीन भेजा जो नई नई अपनाई गई थी। नवंबर 1926 में मास्को में हुई साम्यवादी अंतर्राष्ट्रीय कार्यकारिणी परिषद की बैठक में जो थीसिस स्वीकार की गई उसको लिखने में राय का बड़ा हाथ था।[1] इस निबंध की मुख्य बात यह थी कि चीन क्रांति कृषक क्रांति के रूप में हो और कुमिंटांग के साथ मैत्री को अनावश्यक महत्व दिया जाए।

कमिन्टर्न व रूसी सरकार काफी समय से चीन में होने वाली घटनाओं के प्रति अत्यधिक रुचि ले रही थी। रूसी सरकार अपनी विरोधी साम्राज्यवादी शक्तियों को कमजोर बनाना चाहती थी जिन्होंने अपनी सैनिक कार्यवाही द्वारा तथा व्यापार एवं विरोधी युद्ध नेताओं की मदद करके चीन में अपना गढ़ बना लिया था। इन सबके विपरीत, रूसी सरकार ने जुलाई 1919 में जार की सरकार द्वारा प्राप्त सब अधिकारों को खत्म कर दिया। उसने राष्ट्रीय आंदोलन का स्वागत व सक्रिय रूप से समर्थन किया जो देश की एकता बनाने की कोशिश कर रहा था तथा साम्राज्यवादी आतंक व शोषण से देश को मुक्त करा रहा था। कमिन्टर्न की चीन में रुचि 1920 में आरंभ हुई। कुछ वर्षों बाद कुमिंटांग को पुनः संगठित किया गया और मास्को की सलाह पर साम्यवादियों ने उसमें प्रवेश किया। शुरू में ट्राट्सकी समेत सभी रूसी नेताओं ने इस कदम का समर्थन किया। राय का भी यही विचार था।

कुमिंटांग में प्रवेश करके साम्यवादियों को मजदूरों व किसानों के समर्थन के रूप में बहुत लाभ हुआ। उसी समर्थन के आधार पर जन संगठनों में, सरकार में तथा सेना में उन्हें महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुए। परंतु 1926 में समस्याएं खड़ी हो गईं। कुमिंटांग में कई, भूमिपतियों व पूंजिपतियों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे, उन्हें साम्यवादियों का साथ पसंद नहीं था। राष्ट्रीय सेना के मुख्य सेनापति च्यांगकाई शेक साम्यवादियों के विरुद्ध थे। उन्होंने मार्च 1926 में कैंटन में उनके विरुद्ध विद्रोह किया तथा दूसरा विद्रोह 27 अप्रैल को शंघाई में

हुआ। बाद में कुमिंटांग दो पार्टियों में विभाजित हो गया, दक्षिणपंथी व वामपंथी।

साम्यवादियों ने वामपंथी कुमिंटांग का समर्थन किया पर उन्हें पता चला कि उन दो में विशेष अंतर नहीं है। कमिन्टर्न ने जो इन घटनाओं को ध्यान से देख रहा था नवंबर 1926 की बैठक में इस पर विचार किया और यह तय करने पर कि जिस रास्ते पर अब तक चल रहे थे, वह बदलना जरूरी है। उन्होंने राय को परिवर्तन लाने के लिए भेजा। फिर भी वामपंथी कुमिंटांग के साथ मैत्री बनाए रखने पर जोर दिया।

राय के पुराने मित्र बोरोडिन तब चीन में थे। वे वहां 1923 से थे। वे चीनी साम्यवादी पार्टी (सी.पी.सी.) के मुख्य सलाहकार थे और राष्ट्रीय सरकार के भी। उनके साथ कई रूसी सलाहकार भी थे जिनमें जनरल गैलेन उर्फ ब्लूचर भी थे। बोरोडिन को कमिन्टर्न का नया रास्ता पसंद नहीं आया। इस प्रश्न पर उनके राय के साथ गंभीर मतभेद थे और उन्होंने नई विचारधारा लागू करने में उनकी कोई मदद नहीं की। उनका रुपयों की थैली पर भी नियंत्रण था और चीनी साम्यवादी पार्टी के नेता चेन तुस्यू का विश्वास व समर्थन भी प्राप्त था।

राय के साथ एक अंतर्राष्ट्रीय श्रमिक प्रतिनिधिमंडल भी गया था। उनके अतिरिक्त इसमें इंग्लैड के टाम यान, फ्रांस के जैकस दोरियो और अमेरिका के अर्ल ब्राउडर भी शामिल थे। यह मंडल कैंटन में एक मई को होने वाले अखिल प्रशांत श्रमिक सम्मेलन में भाग लेने आया था और राय चाहते थे कि भारतीय मंडल भी इसमें शामिल हो। सम्मेलन मई के अंत में हंकाऊ में हुआ।

राय व उनका मंडल फरवरी 1927 में कैंटन पहुंचे। राष्ट्रीय सरकार उस समय तक हंकाऊ चली गई थी जो तीन शहरों में एक है जिनका सामूहिक नाम वूहान है। उन्हें वहां जाना था परंतु कैंटन में उन्हें तीन हफ्तों के लिए रुकना पड़ा। एक हवाई जहाज से वह कैंटन जाने वाले थे किंतु जहाज के इंजन में कुछ खराबी आ गई और उन्हें तथा उनके साथियों को कुलियों द्वारा ढोई गई कुर्सियों पर यात्रा करनी पड़ी। इस यात्रा में पांच हफ्ते लग गए और जब वे हंकाऊ पहुंचे तो अप्रैल का महीना आ गया था। इस लंबी यात्रा से राय को गांवों की दशा स्वयं जानने का अवसर प्राप्त हुआ। पर, जो अधिक आवश्यक था, वह था चीनी कम्युनिस्ट पार्टी व कुमिंटांग के नेताओं से मिलना जिसमें यातायात की गड़बड़ी से काफी देर हो गई थी।

जब राय कैंटन पहुंचे कुमिंटांग के दक्षिणपंथियों में तथा साम्यवादी समर्थन प्राप्त वामपंथियों में उत्पन्न मतभेद काफी गंभीर हो चुके थे। सरकार के स्थान पर कि यह नानकिंग हो या वूहान, वांग चिंग वी को वापस बुलाने के निमंत्रण पर और खासतौर से साम्यवादियों के साथ मित्रता रखने पर अलग अलग राय थी। पर वामपंथी कुमिंटांग और साम्यवादी समुदाय इस बारे में बात न करने के लिए हठ किए था। साम्यवादी पार्टी की केंद्रीय समिति जानती

थी कुमिंटांग में साम्यवादियों के विरुद्ध लहर उठ चुकी है और इस बात का खतरा था कि कहीं दक्षिणपंथी नरमपंथियों को अपने में मिलाने में सफल न हो जाएं। राय ने यह खतरा कैंटन में ही अनुभव कर लिया था और इसके विरुद्ध चेतावनी दी थी चूंकि चीनी साम्यवादी पार्टी तब तक खुले आम च्यांग काई शेक के विरुद्ध बोलने को तैयार न थी। यह चेतावनी आम चेतावनी थी तथा केवल सतर्क करने के लिए थी। जो खतरा राय ने देख लिया था वह उनके हंकाऊ पहुंचने के कुछ दिन बाद 12 अप्रैल को सच साबित हुआ जब च्यांग काई शेक ने साम्यवादियों की शंघाई में हत्या करवाई। कुमिंटांग का विभाजन एक सत्य बन गया। वहां दो राष्ट्रीय सरकारें थीं, हंकाऊ में वामपंथी व नानकिंग में च्यांग काई शेक के नीचे दक्षिणपंथी।

कुमिंटांग की आपस में फूट के बाद राय के बोरोडिन व अन्य साम्यवादी पार्टी के नेताओं से बहुत अधिक मतभेद हो गए। ये मतभेद कई प्रश्नों पर थे पर मुख्य तीन थे। ये थे: एक—द्वितीय उत्तरी अभियान, दो—किसान विद्रोह और तीन—वामपंथी कुमिंटांग से संबंध। तीसरा प्रश्न जून में अत्यंत ज्वलंत हो गया जब राय के अनुसार वामपंथी कुमिंटांग मित्र नहीं रहा बल्कि दुश्मन बन गया और क्रांति की खिलाफत का माध्यम भी क्योंकि उस समय तक इसने श्रमिकों व किसानों के विरुद्ध लड़ाई शुरू कर दी थी और च्यांग काई शेक के नेतृत्व में दक्षिणपंथी पक्ष समझौता करने की तरफ बढ़ रहा था। पहले राय तथा बोरोडिन व अन्य लोगों ने वामपंथी कुमिंटांग के साथ सहयोग करने की आवश्यकता स्वीकार कर ली थी, लेकिन वे हमेशा जोर देते रहे थे कि यह सहयोग एक लक्ष्य के लिए था और लक्ष्य पूरा होते ही इसे समाप्त कर देना चाहिए।

इन मतभेदों पर चीनी साम्यवादी पार्टी की पांचवीं कांग्रेस में बहस हुई जो हंकाऊ में 27 अप्रैल से दो हफ्ते तक हुई। राय ने अपना दृष्टिकोण रखा जो बोरोडिन व चिन तु-स्यू के दृष्टिकोण से एकदम विरोधी था। सभी मामलों पर कांग्रेस ने राय का समर्थन किया और उन्हीं के बताए मार्ग के आधार पर निर्णय लिए गए। इस परिणाम से वे खुश थे। पर यह खुशी थोड़े समय की थी। उन्होंने पाया कि निर्णयों को लागू नहीं किया जा रहा था और निर्णय जो लिए गए थे उनके अलग अलग अर्थ निकाले जा रहे थे। राय मजबूर थे क्योंकि वास्तविक शक्ति बोरोडिन व चिन तु-स्यू के पास थी। उन्होंने मास्को से अपील की पर इसका जो जवाब आया वह अस्पष्ट था।

राय दूसरे उत्तरी अभियान के पक्ष में नहीं थे क्योंकि वह इसे सैनिक दृष्टि से अव्यावहारिक, राजनीतिक रूप से खतरनाक व सामाजिक रूप से प्रतिक्रियावादी समझते थे। कांग्रेस ने उनकी राय का समर्थन किया पर जब वूहान सरकार ने अभियान शुरू किया, बोरोडिन व चीनी साम्यवादी पार्टी ने इसका इस आधार पर समर्थन किया कि इसका समर्थन

न करने का अर्थ होगा वामपंथी कुमिंटांग से अलग होना। यह अभियान अंत में समाप्त हो गया और कुमिंटांग के दो पक्षों में समझौता होने का रास्ता खुल गया। अभियान पर बहस का विषय था क्रांति को गहरा बनाना या विस्तृत करना। राय क्रांति की जड़ों को वूहान सरकार के अधीन क्षेत्रों में कृषक आंदोलन को बढ़ावा देकर मजबूत बनाना चाहते थे। बोरोडिन व चीनी साम्यवादी पार्टी ने इसका इस आधार पर विरोध किया कि इससे कुमिंटांग में जमींदार व सैनिक विरुद्ध हो जाएंगे। इस प्रश्न पर अपने भाषणों में राय ने देश की सैनिक, राजनीतिक व सामाजिक स्थिति की असाधारण पकड़ प्रकट की।

जैसे ही अभियान शुरू हुआ, सरकार ने जैसा राय ने पहले ही कहा था,जनता से सब कार्यों को बंद करने को कहा। अपने वादों को पूरा करने की बजाए, सरकार ने जनता से कहा कि वह और त्याग करे। जबकि औद्योगिक मजदूरों का हड़ताल करना निषिद्ध कर दिया गया था, उनसे कहा गया कि वे सेना को यथेष्ट सामान देने के लिए अधिक घंटे काम करें। यहां तक कि साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष भी बंद कर दिया गया ताकि कोई अंतर्राष्ट्रीय उलझन न पैदा हो। इस अभियान ने कुमिंटांग में सैन्यवादियों की स्थिति को और भी मजबूत कर दिया।

इस बीच विद्रोह की भावना गांवों में फैल गई। कृषक हथियार लेकर अपने बहुत पुराने शोषकों, जमींदारों तथा उनके किराये पर लिए स्थानीय गुंडों के विरुद्ध उठ खड़े हुए। कुछ स्थानों पर किसानों ने उन जमीनों पर कब्जा कर लिया जिन पर वे जामींदारों के लिए खेती कर रहे थे। दूसरे स्थानों पर उन्होंने जमींदारों को निकाल बाहर कर दिया। इनको किसानों की ज्यादतियां समझा गया। कुमिंटांग नेताओं ने साम्यवादियों से अपील की कि इन ज्यादतियों को रोका जाए और किसानों को अनुशासित किया जाए। राय ने इनको ज्यादतियां नहीं समझा, वे किसानों का समर्थन करने तथा संगठित रूप से जमीनों पर कब्जा करने के पक्ष में थे। उनका विचार था कि किसान संघों का संगठन किया जाए तथा उन्हें राजनैतिक शक्ति दे दी जाए ताकि वे जमींदारों के रखे गुंडों को निहत्था कर सकें और क्रांति सेना को केंद्र बिंदु बनाकर नागरिक सेना बनाएं। इस बात पर भी राय व बोरोडिन तथा चीनी साम्यवादी पार्टी नेता असहमत थे।

वामपंथी कुमिंटांग के साथ संबंधों का प्रश्न ही सब मतभेदों का कारण था। बोरोडिन व चिन तु-स्यू की राय थी कि संबंध बनाए रखने चाहिए तथा मजबूत करने चाहिए जबकि राय जून तक इस नतीजे पर पहुंच चुके थे कि उनका काम पूरा हो चुका है और जनता के क्रांतिकारी आंदोलन के भावी विकास के हित में इन्हें तोड़ देना चाहिए। यह बहस कुछ दिनों तक चलती रही और उधर मास्को से अस्पष्ट विरोधात्मक निर्देश आते रहे।

इस बीच में कुछ सैन्यवादियों ने सब कुछ अपने हाथ में ले लिया और साम्यवादियों

व उनके संगठनों पर आक्रमण कर दिया। सिया-ताओ-यू ने विद्रोह किया जिसने सरकार को उलटने के लिए राजधानी पर धावा बोल दिया। उसे हरा दिया गया और लोगों के तीव्र प्रतिरोध द्वारा वापस भगा दिया गया। लेकिन सरकार ने उसके विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की। पंद्रह दिन बाद एक संगीन बगावत चांगशा में हुई। जनरल सू केसियांग व उनके नीचे के अफसरों ने सरकार के विरुद्ध विद्रोह किया। जैसा कि राय ने अपने'रिवोल्यूशन एंड काउंटर रिवोल्यूशन इन चाइना' में लिखा है, ''उन्होंने सूबों की सरकार उलट दी, उसके सदस्यों को जेल में डाल दिया, कुमिंटांग की स्थानीय समिति समाप्त कर दी, कुमिंटांग के कृषक विभाग द्वारा चलाए जाने वाले राजनैतिक स्कूल को बंद कर दिया और जनता के संगठनों व साम्यवादियों को दबाने के आम तरीके इस्तेमाल किए।''[2] इस बार भी सरकार ने कोई कदम नहीं उठाया। स्थानीय साम्यवादी और कुमिंटांग के सक्रिय लोगों ने विद्रोह का मुकाबला करने की कोशिश की। उन्होंने किसानों को इकट्ठा किया और बीस हजार से ऊपर लोगों ने चांगशा को घेर लिया। किंतु जब वे शहर के गेट पर थे, वूहान के साम्यवादी मुख्यालय से उन्हें हुकुम दिया गया कि वे तितर-बितर हो जाएं और वापिस चले जाएं। इन घटनाओं से स्पष्ट था कि सैन्यवादी कुमिंटांग से साम्यवादियों को निकाल बाहर करने की तैयारी कर रहे थे।

राय के अनुसार हालत गंभीर थी परंतु बिल्कुल निराशापूर्ण न थी। वे एक दृढ़ आक्रमण के पक्ष में थे पर उनकी राय नहीं मानी गई। कई वर्षों बाद उन्होंने अपनी किताब 'चीन में मेरे अनुभव' में लिखा, ''निराश होकर मैंने साम्यवादी पार्टी के असंभव राजनैतिक ब्यूरो के मुखिया की अवहेलना करके काम करने की कोशिश की। मैंने केंद्रीय समिति की बड़ी सभा बुलाने की मांग की जिसमें स्थानीय नेता भाग ले सकें। मांग इस कारण नामंजूर कर दी गई कि उस संकटमय दिनों में पार्टी के महत्वपूर्ण सदस्य अपनी अपनी जगहों को नहीं छोड़ सकते है। ऊंचे नेता बड़ी बैठक के विरुद्ध थे क्योंकि स्थानीय कार्यकर्ता किसी निर्णायात्मक कार्यवाही के लिए उतावले थे और वे मेरी योजना का अवश्य ही समर्थन करते। अंतिम उपाय सोचकर मैंने अलग अलग साथियों, चीनी तथा रूसी दोनों के सहयोग से कार्यवाही करने की कोशिश की। गैलेन (राष्ट्रीय सरकार के सैनिक सलाहकार) मुझसे पूर्णतया सहमत थे। उस समय तक कई रूसी साथी भी मेरे विचार से सहमत हो गए थे पर सारी सत्ता बोरोडिन के पास थी। मास्को ने मुझे उनकी अवसरवादिता के विरुद्ध राजनीतिक रूप से समर्थन दिया था। वे दूसरे मामलों में नियंत्रण करने की स्थिति में थे और परिणामस्वरूप साम्यवादी पार्टी के तानाशाह के रूप में काम करते थे। उनके अनुयायी होने तथा सैद्धांतिक रूप से उनके तरीकों को मानने के कारण, चीन की साम्यवादी पार्टी के उच्च्य नेता अंतर्राष्ट्र के आदेशों का बार बार उल्लंघन और स्थानीय प्रतिनिधि की अवज्ञा कर उन्हीं का अनुसरण करते थे।''[3]

इस हालत में वामपंथी कुमिंटांग तथा राष्ट्रीय सरकार के नेता वांग चिंग वी की ओर

मुखातिब हुए, यह सोचकर कि वही अकेले व्यक्ति हैं जो स्थिति संभाल सकें। वांग चिंग वी को साम्यवादियों के बारे में संदेह था कि वो शक्तिशाली तांग-शेग-चि का समर्थन करेंगे न कि उनका। बोरोडिन व चीनी साम्यवादी पार्टी के कुछ कामों ने यह संदेह उनके मन में पैदा कर दिया था। जो कदम राय ने वांग चिंग वी को साम्यवादी समर्थन का आश्वासन देने के लिए उठाए उनका वर्णन उन्होंने अपनी किताब 'चीन में मेरे अनुभव' में इस प्रकार किया है, ''चीन लौटते समय वह मास्को होते हुए आए थे। वहां उन्हें रूसी सरकार व साम्यवादी अंतर्राष्ट्र के पूरे समर्थन का वचन दिया गया था। मैंने किसी तरह मास्को से आश्वासन की मांग के लिए रेडियो संदेश भेजा। दूसरी ओर, मैंने कार्यवाही का ठोस कार्यक्रम उनके सामने रखा जिससे वूहान सरकार में उनका महत्वपूर्ण नेतृत्व पुनः स्थापित हो सके। वह योजना से सहमत थे बशर्ते आवश्यक मदद मिल जाए...''कुछ दिन बाद मास्को से तार आया जिसमें वांछित आश्वासन दिया गया था और बातों के अलावा इसमें निम्नलिखित सुझाव था,'जमीन छीन लो, वर्तमान अविश्वसनीय सेनाध्यक्षों को मार डालो, बीस हजार साम्यवादियों को हथियार दे दो और पचास हजार कार्यकर्ताओं व किसानों से नई सेना बनाओ, कुमिंटांग की केंद्रीय कार्यकारिणी समिति में पुराने सदस्यों की जगह नए श्रमिक व किसानों को रखो और कुमिंटांग के किसी प्रसिद्ध सदस्य को चैयरमैन बनाकर प्रतिक्रियावादी अफसरों पर मुकदमा चलाने के लिए क्रांतिकारी न्यायालय स्थापित करो'।''

''जब यह अभीष्ट आश्वासन आया तब तक बहुत देर हो चुकी थी। इस बीच यह सोचते हुए कि साम्यवादियों ने धोखा दिया है, वांग चिंग वी ने दक्षिण पक्ष से बातचीत शुरू कर दी थी जो च्यांग काई शेक को संतुष्ट करने के लिए साम्यवादियों के खून के प्यासे हो रहे थे...इस मोड़ पर मैने सोचा कि वांग चिंग वी का विश्वास प्राप्त करने के लिए आखिरी कोशिश की जाए। मैंने उन्हें मास्को के संदेश के बारे में बताया।''

वांग चिंग वी ने जो संदेश आया उसकी नकल मांगी, जो राय ने उन्हें दे दी। कहा जाता है कि वांग ने यह अपने साथियों को दिखाई जो चांग काई शेक के संपर्क में पहले ही से थे। उन्होंने शीघ्र कार्यवाही करने का निश्चय किया और साम्यवादियों पर आक्रमण शुरू कर दिया। दरअसल क्रिस्टियन जनरल कैंग-यू-सांग की आखिरी धमकी जिसने सभी राष्ट्रवादी तत्वों की एकता के हित में वूहान नेताओं का रूसी सलाहकारों को बरखास्त करने तथा साम्यवादी पार्टी को दबाने के लिए कहा गया था, मिलने पर उन्होंने अपनी कार्यवाही का मार्ग तय कर लिया था। इस चेतावनी के साथ ही साथ हल्की-सी धमकी भी थी कि यदि सुझाव न माना गया तो वूहान पर उत्तर की ओर से आक्रमण किया जाएगा। इस धमकी से तथा वूहान नेताओं के विश्वास से कि कम्युनिस्टों के बनाए उनके विचार च्यांग काई शेक से ज्यादा मेल रखते हैं, समस्या का वारा-न्यारा किया न कि राय के मास्को तार की नकल वांग चिंग वी को

देने से कुमिंटांग के दोनों पक्ष मिल गए। दोनों ने मिलकर साम्यवादियों के विरुद्ध लड़ाई शुरू कर दी। चीनी साम्यवादी गिरफ्तार कर लिए गए और कइयों को मौत की सजा दे दी गई। श्रमिक संघ व किसान संघ भी नष्ट कर दिए गए। आतंक का शासन स्थापित हो गया। रूसी सलाहकारों को निकाल बाहर किया गया। बोरोडिन ने 27 जुलाई को हंकाऊ छोड़ा। राय ने जुलाई के अंत या अगस्त के आरंभ में छोड़ा।

राय के चीन के उद्देश्य का अंत असफलता में हुआ। किंतु यह असफलता किसी व्यक्ति की नहीं परंतु व्यवस्था की थी। कमिन्टर्न ने चीन जैसे घनी आबादी व विषम देश में कार्यवाही स्थल से हजारों मील दूर बैठकर क्रांति करवाने की कोशिश की। यह गलत ढंग से सोचा गया दुस्साहसिक कार्य था। कमिन्टर्न में स्टालिन व ट्राट्सकी के पार्टीवादी झगड़ों से हालत और भी कठिन बना दी गई। राय ने भरपूर कोशिश की कि जो समय समय पर उन्हें आदेश मिलते थे, उन पर अमल किया जाए। पर उन्हें बहुत विपरीत हालात में काम करना पड़ा था। उनके तथा बोरोडिन व चीनी साम्यवादी पार्टी में गंभीर मतभेद थे और इन्हीं लोगों के पास असली सत्ता थी। वस्तुगत स्थितियां भी उनके विपरीत थीं। सामंती सैन्यवादी और अभिजात्यवर्ग के पास जिन्हें विदेशी साम्राज्यवाद का समर्थन मिल रहा था बहुत अधिक ताकत थी जबकि उनके मुकाबले श्रमिकों व किसानों के संगठन बहुत कमजोर थे।

कई लोगों ने राय की मास्को का तार वांग चिंग वी को दिखाने की निंदा की है। कुछ ने तो इसको विश्वासघात तक कहा है। यह प्रमाण था जो उनके विरुद्ध साम्यवादियों ने दिया जब वे कुछ वर्षों बाद भारत लौटे। पर इसको मात्र अविवेक कहा जा सकता है। कुछ भी इसके कारण नहीं हुआ था। वामपंथी कुमिंटांग ने पहले ही अपनी कार्यवाही का रास्ता तय कर लिया था। कमिन्टर्न के विवरणों में राय के विरुद्ध ऐसा कोई भी आरोप नहीं है। चीन में उद्देश्य असफल होने के साथ राय का कमिन्टर्न के अधिकारी वर्गीकरण में पतन शुरू हो गया। दो साल बाद उनका इस संगठन से संबंध ही पूर्ण रूप से टूट गया।

7

कमिन्टर्न से मतभेद

कमिन्टर्न से मतभेद सोवियत संघ की साम्यवादी पार्टी के आपसी मतभेदों को प्रकट करते थे। कमिन्टर्न शुरू से ही सोवियत संघ की साम्यवादी पार्टी के नियंत्रण में थी क्योंकि रूस अकेला ऐसा देश था जो अपने यहां क्रांति लाने में सफल हो पाया था। केंद्रीय संस्था को विश्व भर में क्रांतिकारी गतिविधियों के विकास के लिए आवश्यक साधन प्रदान कर सकता था। बाद के वर्षों में यह नियंत्रण और अधिक स्पष्ट और संपूर्ण हो गया। जो भी व्यक्ति कमिन्टर्न में किसी भी प्रकार की भूमिका निभाना चाहता था उसके लिए यह आवश्यक था कि वह सोवियत संघ की साम्यवादी पार्टी के नेताओं को प्रभावित कर पाए और कमिन्टर्न प्रायः सोवियत संघ के विदेश विभाग की शाखा बन गया। राय ने अपनी पुस्तक 'साम्यवादी अंतर्राष्ट्र' में कमिन्टर्न की इस विकृति को अच्छी तरह चित्रित किया है।

जनवरी 1924 में लेनिन की मृत्यु के बाद सोवियत संघ की साम्यवादी पार्टी में मतभेद बहुत अधिक बढ़ गए। पहले स्टालिन और ट्राट्सकी के बीच नेतृत्व के मामले को लेकर संघर्ष हुआ। इसके अलावा सोवियत संघ द्वारा अपनाई जाने वाली नीतियों के बारे में भी विवाद था। दो अलग अलग नारों से यह मतभेद स्पष्ट हो जाते हैं, "स्थायी क्रांति" व "एक देश में समाजवाद"। ट्राट्सकी को पहले से संबंधित किया गया है और स्टालिन को दूसरे से। वैसे समय समय पर इनमें थोड़े बहुत परिवर्तन भी हुए।

भिन्न दलों की स्थिति भी समय समय पर बदलती रही। जहां तक इन मतभेदों का संबंध है, राय स्टालिन के दृढ़ समर्थक थे, क्योंकि वे स्टालिन की इस नीति में विश्वास करते थे कि जो कुछ रूस में क्रांति से प्राप्त हुआ है, उसे ठोस व स्थायी बनाया जाए। कई साम्यवादियों को जो इस नीति में विश्वास नहीं रखते थे सोवियत संघ की साम्यवादी पार्टी व कमिन्टर्न से बाहर निकाल दिया गया।

1928 तक स्टालिन ने अपने दुश्मनों को पूरी तरह खत्म नहीं किया था। उन्हें मिटाने के लिए उन्होंने वामपंथी रुख अपनाना आवश्यक समझा। इसके अनुसार ही पहली पंचवर्षीय योजना में भारी उद्योग व सामूहिक खेती पर जोर दिया गया। लेनिन द्वारा 1921 की नई आर्थिक नीति के अंतर्गत हुए निवर्तन के बाद आर्थिक क्षेत्र में यह अभियान शुरू किया गया। राष्ट्रीय स्तर के इस अभियान का प्रभाव अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र पर प्रतिबिंबित होना स्वाभाविक ही था। इसे कमिन्टर्न के सितंबर 1928 में हुए छठे सम्मेलन में किए गए निर्णयों द्वारा सुनिश्चित किया गया जिसमें राजनीति और श्रमिक संघ क्षेत्रों में उस समय तक अपनाए गए संयुक्त मोर्चे की नीति को समाप्त कर दिया गया। 'वर्ग के विरुद्ध वर्ग' की नीति पर अमल करने का निर्णय लिया गया और जिन लोगों ने इसे स्वीकार नहीं किया उनकी फासिस्ट और प्रतिक्रांतिकारी होने का लांछन लगाकर भर्त्सना की गई। इस उद्देश्य से पूंजीवाद द्वारा अपने अपकर्ष के तीसरे और अंतिम चरण में पहुंच जाने के सिद्धांत को गढ़ा गया। राय ने सिद्धांतों और नीतियों का ऐसा प्रतिपादन अस्वीकार किया और स्पष्ट शब्दों में अपनी असहमति व्यक्त की।

चीन में अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने में असफल होने के बाद राय का सम्मान कम हो गया। ट्राट्सकी के विरुद्ध लड़ाई के लिए स्टालिन की चीन पर वास्तविक या काल्पनिक विजय की आवश्यकता थी। चूंकि राय को विजय नहीं मिली, इससे स्टालिन व उनके अंधे हिमायती उनसे बहुत ज्यादा नाखुश हो गए। चीन से उनके लौटने के बाद स्टालिन ने उनसे मिलने से इंकार कर दिया और अपने भाषणों, बयानों तथा अन्य सामग्री का ब्यौरा ठीक-ठाक करने के बाद उन्हें बर्लिन चले जाना पड़ा। चीन की समस्या पर विचार-विमर्श करने के लिए फरवरी 1928 को साम्यवाद अंतर्राष्ट्र की कार्यकारिणी परिषद की पूरी बैठक बुलाई गई। राय ने सोचा यह एक ऐसा अवसर है जब वे अपना दृष्टिकोण सामने रख सकते है। वे बैठक में भाग लेने मास्को गए परंतु उनको कुछ भी करने का मौका नहीं दिया गया। बैठक के दौरान ही कान की तकलीफ से राय बहुत बीमार हो गए। बजाए इसके कि उन्हें उस अस्पताल भेजा जाता जो कमिन्टर्न के उच्च स्तरीय कार्यकर्ताओं के लिए था, उन्हें मास्को की सीमा के एक ऐसे अस्पताल में भेजा गया जिसमें उनका सही इलाज करने की आवश्यक व्यवस्था ही न थी। इससे उनके मित्रों को संदेह हो गया और उन्होंने उनके चोरी-छिपे निकल जाने का इंतजाम कर दिया।[1] अनुमान है कि यह काम बुखारिन की मदद से किया गया। राय की वही अंतिम मास्को यात्रा थी। यदि वे भागे न होते तो वे भी स्टालिन के क्रोध के अनगिनत शिकारों में शामिल हो जाते।

राय के विरुद्ध राजनैतिक हमला छठी कमिन्टर्न कांग्रेस में आरंभ हुआ। यह हमला उस विषय पर किया गया जिसे बुखारिन ने कामचलाऊ तौर पर 'उपनिवेश-अंत' की संज्ञा दी जैसा

कि राय ने उस लंबे स्पष्टीकरण से समझाया जो उन्होंने कांग्रेस की समाप्ति के कुछ सप्ताह बाद कमिन्टर्न को भेजा था। 'उपनिवेश' का गलत अर्थ निकाला गया और राय तथा ग्रेट ब्रिटेन की साम्यवादी पार्टी के कई नेताओं की जिनमें पामदत्त व ए. जे. बैनेट जैसे निर्भीक समर्थक शामिल थे, कठोर निंदा की गई। बीमारी के कारण राय स्वयं इन आरोपों का खंडन करने के लिए कांग्रेस में मौजूद नहीं थे , पर वहां दूसरे लोग थे विशेषकर ग्रेट ब्रिटेन की साम्यवादी पार्टी से जिन्होंने साफ शब्दों में राय के दृष्टिकोण को सही बताया। लेकिन यह प्रयत्न विफल रहा। रूसी नेताओं ने जैसा कि इतिहासकार ने कहा है 'उपनिवेश-अंत' की संज्ञा को घृणित रूप देने का फैसला किया और राय की उसी आधार पर भर्त्सना की। इन आक्षेपों की शुरुआत कुसेनिन ने अर्थशास्त्री यूजीन वर्गा के द्वारा प्रस्तुत एक सिद्धांत के आधार पर की। वर्गा का कहना था कि ग्रेट ब्रिटेन ने भारत को अपना कृषि उत्पादन क्षेत्र, कच्चा माल प्राप्त करने का स्रोत और ब्रिटिश निर्यात उद्योगों की मंडी मानने की सामान्य नीति दोबारा आरंभ की है। इसके फलस्वरूप वहां औद्योगीकरण की अपेक्षा ग्रामीणीकरण अधिक ही रहा है।

राय ने वर्गा के इस सिद्धांत का विरोध किया और बताया कि कैसे युद्ध के बाद के हालातों ने ब्रिटेन को उद्योगों की प्रगति को रोकने वाली पुरानी नीति को बदलने पर मजबूर कर दिया था। उपनिवेशवाद-अंत, से उनका तात्पर्य मजदूरों व किसानों की स्वतंत्रता से नहीं बल्कि मध्य वर्ग की स्वतंत्रता से था। उन्होंने कहा, "भारत का मध्य वर्ग पूरे उपनिवेशी दासत्व से निकल कर ब्रिटिश राज्य में ही अपनी सरकार बनाने की ओर अग्रसर हो रहा है। इसलिए उनके लिए यह आवश्यक नहीं है कि वे क्रांति के खतरनाक रास्ते पर चलें। दूसरे शब्दों में भारतीय मध्य वर्ग की उपनिवेशिक आर्थिक और राजनीतिक स्थिति की उत्तरोत्तर समाप्ति उन्हें क्रांति का विरोधी बना देती है और निकट भविष्य में जब उनके वर्ग के उपनिवेशिक दर्जे का अंत और अधिक स्पष्ट हो जाएगा तो वे निश्चय ही प्रतिक्रांतिकारी बन जाएंगे। उपनिवेशिक मध्य वर्ग के हाथ कुछ राजनीतिक शक्ति का हस्तांतरण साम्राज्यवाद को कमजोर नहीं बनाता क्योंकि प्रवासी मध्य वर्ग साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष को और बढ़ावा देने के लिए नहीं बल्कि क्रांतिकारी आंदोलन को दबाने के लिए इस शक्ति का उपयोग करता है। यह बात अन्य उपनिवेशी देशों के अनुभवों से साफ जाहिर होती है। अतः भारतीय मध्य वर्ग के संदर्भ में 'उपनिवेशी अंत' एक 'भ्रांति' नहीं है, यह एक तथ्य है जो (वहां की) स्थिति में बहुत महत्वपूर्ण है।"[2] राय ने यह विचार अपने उस विस्तृत बयान में व्यक्त किया जो उन्होंने साम्यवाद अंतर्राष्ट्र की कार्यकारिणी परिषद को 1929 में दिया। पूरा बयान उनकी किताब 'हमारे मतभेद' में प्रकाशित हुआ हैं।

'उपनिवेश-अंत' व राय के विरुद्ध आंदोलन इतना महत्त्वपूर्ण नहीं था। इससे अधिक महत्वपूर्ण था वह नया मार्ग जो अपनाया गया। यह अति वामपंथी जोखिम वाला मार्ग था।

जैसा साम्यवाद अंतर्राष्ट्र की कार्यकारिणी परिषद की दसवीं पूरी बैठक में स्पष्ट किया गया। इसके अनुसार भारतीय साम्यवादियों से कहा गया कि वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और वामपंथी संस्थाएं जैसे स्वतंत्रता लीग से अलग हो जायें और साम्राज्यवाद व पूंजीवाद के पिट्ठू बताते हुए तथा क्रांति के गद्दार कहकर उनके विरुद्ध एक जन-आंदोलन करें, मजदूरों व किसानों की पार्टियों को खत्म कर दें और कांग्रेस के विरूद एक नया साम्राज्यवाद विरोधी संयुक्त मोर्चा कायम करें। मजदूर संघ क्षेत्र में उनसे कहा गया कि मजदूरों के संघर्ष को और बढ़ाने के लिए तथा उन्हें देशव्यापी राजनैतिक हड़ताल के लिए तैयार करने के लिए वे पुराने बने हुए मजदूर संगठनों से अपना संबंध तोड़ लें और नए लाल मजदूर संघ बनाएं। राजनैतिक व मजदूर संघ संबंधी ये सब निर्देश अव्यावहारिक और विघटनकारी थे। इनसे तमाम साम्यवादी अस्त-व्यस्त हो गए तथा उनकी स्थिति एक छोटे समुदाय जैसी बन गई।[3] जो मार्ग अपनाया गया था वह उस रास्ते के बिल्कुल विपरीत था जो राय के निर्देशन में अब तक अपनाया गया था। कमिन्टर्न की नई धारा से कई यूरोपीय देशों में भी ऐसे ही विनाशकारी परिणाम हुए। जर्मनी में तो खासतौर पर बहुत ही विध्वंसकारी नतीजे निकले जिनको हिटलर के उत्थान का महत्वपूर्ण कारक कहा जा सकता है। समाजवादी जनतंत्रियों के विरुद्ध आंदोलन और उनको समाजवादी तानाशाह तक कहना तथा उनकी तानाशाहियों से भी ज्यादा साम्यवादियों का दुश्मन समझना और पुराने श्रमिक संघों को तोड़ने व बर्बाद करने के उतने ही जहरीले प्रचार से श्रमिकों का उत्साह टूट गया और उनकी हिटलर के बढ़ते हुए खतरे का मुकाबला करने की शक्ति भी कमजोर हो गई। कांग्रेस के कुछ समय बाद अनुशासन लागू करने का प्रचार शुरू हुआ। जिन्होंने पूरे तौर से पार्टी की नीति को नहीं माना उन्हें पार्टी व कमिन्टर्न से बाहर निकाल दिया गया। ग्रेट ब्रिटेन की साम्यवादी पार्टी के सदस्यों को जिन्होंने असहमति प्रकट की थी जबरदस्ती झुकाया गया और एक साल बाद नया नेतृत्व थोपा गया। अमेरिका में पार्टी के अधिकतर लोग ऐसे थे जो नीति से असहमत थे। पर जून 1929 में उनके दक्षिणपंथी झुकाव के कारण उन्हें पार्टी से निकाल दिया गया। जर्मनी में भी राय के मित्र बैन्डलर और थेल्हीमर जिस दल के नेता थे उसे भी उसी कारण अलग कर दिया गया। बुखारिन को भी नहीं बख्शा गया। अगले वर्ष उन्हें साम्यवादी अंतर्राष्ट्र की कार्यकारिणी परिषद और सोवियत संघ की साम्यवादी पार्टी के पोलितब्यूरो से बहिष्कृत कर दिया गया। उनके विरुद्ध आरोप था कि वे दक्षिणपंथी तत्वों का समर्थन करते हैं।[4]

आश्चर्य था कि राय जो सबसे बड़े अपराधी और कूसेनिन के अनुसार 'साम्राज्यवाद के पिट्ठू' तथा 'उपनिवेश-अंत' मत के जन्मदाता थे, उनके विरुद्ध कार्यवाही में एक साल की देर की गई। दसवीं बैठक में जो जून 1929 में हुई उनकी फिर से 'विश्वासघाती' कहकर निंदा की गई पर उनके विरुद्ध असली कार्यवाही छह महीने बाद की गई। 13 दिसंबर 1929

के 'इनप्रिकोर' में निम्नलिखित घोषणा की गई, ''साम्यवाद अंतर्राष्ट्र की कार्यकारिणी परिषद की संपूर्ण बैठक में प्रस्ताव (अंतर्राष्ट्रीय स्थिति और साम्यवाद अंतर्राष्ट्र के कार्यों से संबंधित परिच्छेद-1) तथा साम्यवाद अंतर्राष्ट्र, की कार्यकारिणी परिषद की प्रधान परिषद के 19-12-1928 के निर्णय के अनुसार जिसके अंतर्गत बैन्डलर संगठन के अनुयायी साम्यवाद अंतर्राष्ट्र के सदस्य नहीं रह सकते, साम्यवाद अंतर्राष्ट्र की कार्यकारिणी परिषद की प्रधान परिषद घोषणा करती है कि राय ने बैन्डलर प्रकाशनों में योगदान देकर तथा बैन्डलर संगठन का समर्थन कर अपने आप को साम्यवाद अंतर्राष्ट्र की श्रेणी से बाहर कर लिया है और उन्हें साम्यवाद अंतर्राष्ट्र से निष्कासित माना जाए।''[5] उनके विरुद्ध कार्यवाही में देर होने का कोई कारण नहीं दिया गया था। संभवतया कमिन्टर्न अधिकारी आशा कर रहे थे राय अपना मत बदल देंगे या चुप रहेंगे। परंतु राय ने न तो मत बदला और न ही चुप रहे। वे अपने विचारों को व्यक्त करते रहे। वे जर्मनी और अमरीका में जो और असहमत लोग थे उनसे मिल गए और छठी कांग्रेस ने जो नीति अपनाई थी उसके संशोधन के लिए वे जोर डालते रहे। बैन्डलर दल की पत्रिका में उन्होंने नीति की निंदा करते हुए कई जोरदार लेख लिखे। इसको बरदाश्त नहीं किया जा सकता था और अंत में उन्हें कमिन्टर्न की श्रेणी से निकाल दिया गया।

कमिन्टर्न के सदस्यों को संबोधित एक खुले पत्र में जो बाद में 'हमारे मतभेद' में छपा, राय ने दसवीं पूरी बैठक में जो हुआ, उसका सुंदर चित्रण तथा अपनी स्थिति के बारे में उपयुक्त स्पष्टीकरण दिया है। उस खुले पत्र के कुछ अंश शायद दिलचस्प होंगे। राय ने लिखा, ''कुछ समय से मैं 'पवित्र गिलेटिन' के सामने खड़ा हुआ हूं, जिसका विवेकहीन इस्तेमाल अंतर्राष्ट्रीय साम्यवादी आंदोलन का विध्वंस कर रहा है। मैं इस स्थिति में करीब एक वर्ष से खड़ा हुआ हूं। अपने सिर के लिए मैं नहीं कांप रहा हूं, बल्कि उन लोगों की नाकाबलियत पर भौचक हूं जिन्होंने आंदोलन का नेतृत्व हथिया लिया है और उनकी उस धृष्टता से आश्चर्यचकित हूं जिससे यह असमर्थ व गैर जिम्मेदार नेतृत्व आंदोलन को सर्वनाश की ओर ले जा रहा है। अब मेरी बारी आई है जिसके देर से आने का करण स्पष्ट नहीं है। साम्यवाद अंतर्राष्ट्र की कार्यकारिणी समिति की दसवीं पूरी बैठक में जिम्मेदारी से बचने के अपने खास अंदाज से कूसेनिन महाशय ने मेरे नाचीज सिर की मांग की थी। मेरे आखिरी अपराध—जर्मन विरोधी प्रकाशनों में लिखना—के बारे में कहते हुए उन्होंने आश्चर्य व्यक्त किया कि इतने भयानक अपराध के बाद भी क्या कोई उन लोगों का साथी बना रह सकता है जिनके विचारों का वह प्रतिनिधित्व करता है।

''इस काम के लिए मंच तैयार कर लिया गया था।'जनता' ने समर्थन दिया 'गिलेटिन की ओर' किसी अज्ञात कोने से यह प्रायोजित चीख उठी और जो साम्यवाद अंतर्राष्ट्र के जन्म से ही उससे जुड़ा हुआ था, जो शुरु के वर्षों से ही इसके क्रांतिकारी आंदोलन में भाग ले रहा

था, उस पर अब 'वामपंथ से हटने' का संदेह प्रकट किया गया और उसकी निंदा की गई तथा स्वाभाविक रूप से उसे साम्यवाद अंतर्राष्ट्र के घेरे से बाहर कर दिया गया।''[6]

कूसेनिन के 'उपनिवेश-अंत' के सिद्धांत को विकृत करने के बारे में राय ने कहा, ''कूसेनिन ने इस हद तक दावा किया कि 'वैनगार्ड' तथा 'मासिज' के जिन स्तंभों का मैं संपादन करता था उनमें मैंने वर्षों 'सामाजिक जनतंत्र सिद्धांत' का प्रचार किया है। इस दावे का बिल्कुल बेबुनियाद होना उन पत्रिकाओं की फाइलों से साबित किया जा सकता है। मैं चुनौती देता हूं कि कोई भी उनमें एक भी अंश ऐसा दिखाए जो कूसेनिन के आरोप को सिद्ध कर सके। इसके अलावा वे पत्रिकाएं मेरे संपादन में मई 1922 से 1928 के शुरू तक भारत में साम्यवादी प्रचार के मुख्य साधन के शुरू में छापी गईं। (मैं 1927 के शुरू के आठ महीनों का जिम्मेदार नहीं हूं क्योंकि मैं चीन में था।) उस पूरे समय में एक बार भी मेरे दक्षिणपंथी झुकाव की निंदा नहीं की गई।'' इससे आगे राय ने लिखा,''अब यह मालूम हुआ है कि पूरे समय मैं साम्राज्यवाद का सामाजिक जनवादी पिट्ठू रहा हूं। इसी तर्क के आधार पर यह अवश्य ही स्वीकार किया जाना चाहिए कि छठी कांग्रेस तक साम्यवाद अंतर्राष्ट्र का भारत के बारे में गलत दृष्टिकोण रहा था। अगर छठी कांग्रेस की रिपोर्ट व विचारधारा लेनिन के उच्चतम विवेक से प्रदर्शित करती है तब जहां तक उपनिवेश (विशेषकर भारत) का प्रश्न है, लेनिन जिनोविव, बुखारिन, स्टालिन सभी अपनी बार लेनिन विरोधी साम्राज्यवाद के सामाजिक जनवादी पिट्ठू रहे हैं और यही दरअसल उपनिवेशवाद पर तथा छठी कांग्रेस की अन्य समस्याओं से संबंधित प्रस्ताव का उद्देश्य है। लेनिन ने जिन व्यावहारिक पद्धतियों की शिक्षा दी उनसे बहुत अलग है।''[7] पत्र के अंत में कहा गया, ''वे अपराध जिनका आरोप मुझ पर लगाया गया है, मैंने नहीं किए। मेरा कसूर यही है कि मैं स्वतंत्र रूप से सोचना अपना अधिकार समझता हूं और इसकी इस संकटमय समय में जिससे होकर साम्यवाद अंतर्राष्ट्र गुजर रहा है इजाजत नहीं है। अब तक मैंने अपनी असहमति जाहिर नहीं की थी, मुझे न तो विश्वासघाती घोषित किया गया था और न ही शासकीय इंटरनेशनल से बाहर निकाला गया था। खामोशी का प्रतिबंध मुझ पर लगा दिया गया था, एक ऐसा शक्तिशाली यंत्र जिसने मुझे विचारों को व्यक्त करने के सभी साधनों से वंचित कर दिया था। दूसरे शब्दों में यदि मैं अपनी आवाज उठाने का साहस न करता तो स्वतंत्र रूप से सोचने के अक्षम्य अपराध के लिए मुझे गुमनाम दबा दिया जाता। परंतु एक क्रांतिकारी का कर्तव्य कभी कभी स्वेच्छा से लगाए अनुशासन की संकुचित सीमाओं का उल्लघंन कर जाता है, मैं ऐसी स्थिति में था जब मैंने देखा कि यह मेरा क्रांतिकारी कर्तव्य था कि मैं इस वर्तमान नेतृत्व के विरोधी दल में शामिल होऊं जो अंतर्राष्ट्र को नष्ट कर रहा है।''

''मैं छठी कांग्रेस के न केवल भारत के प्रश्न पर बल्कि सभी प्रस्तावों से असहमत

हूं। यदि किसी एक विशेष प्रश्न पर गलती हुई हो तो यह उचित है कि उस पर कुछ न कहा जाए, इस आशा में कि कुछ समय पश्चात सुधार कर दिया जाएगा। किंतु भारत में जो गलत मार्ग अपनाया गया वह बहुत बड़ी गलती का छोटा-सा अंश है। इसलिए यह ठीक नहीं है कि चुप रहा जाए। अंतर्राष्ट्र में संकट का समय है जो इसके नेतृत्व व उस नेतृत्व के व्यवहार से स्पष्ट है।"

इस खुले पत्र का कोई असर नहीं हुआ। यह विक्षिप्त नीति जारी रही जब तक कि 1935 में सातवीं कमिन्टर्न कांग्रेस में इसका सुधार न किया गया। इस बीच हिटलर अपना फासिस्ट शासन जर्मनी पर लागू कर चुके थे और स्टालिन को छठी कांग्रेस नीति पर फिर से सोचने पर मजबूर किया। राय को कमिन्टर्न में पुनः सम्मिलित करने के प्रश्न पर तब भी गौर नहीं किया गया, हालांकि नीति में उनकी मांग के अनुरूप परिवर्तन किया गया। उनको निकालने के बाद साम्यवादियों ने राय के विरुद्ध असंख्य आरोप लगाना शुरू कर दिया। एक आरोप था कि उन्होंने भारत में साम्यवादी शक्ति को तथा देश में अपने प्रभाव के बारे में बहुत बढ़ा-चढ़ा कर बताया। दूसरा था कि उन्होंने बहुत सारे धन का गबन किया है। इनमें से किसी को भी गंभीरता से नहीं लिया जा सकता, जब तक यह मालूम न चल जाए कि क्या रिपोर्ट भेजी गई थी और उनके हाथ में कितना पैसा दिया गया था। दोनों ही गुप्त बातें हैं जिन्हें क्रेमलिन ने अभी तक जाहिर नहीं किया है। इस बात का भी जिक्र कर दिया जाए कि राय ही वे अकेले माध्यम नहीं थे, जिनके द्वारा क्रेमलिन व कमिन्टर्न भारत में काम कर रहे थे।

कमिन्टर्न से टूटना राय के लिए एक बड़ा धक्का था। इसने उन्हें उस काम से वंचित कर दिया जो वह भारत के लिए कर रहे थे। वह साम्यवादी पत्रिकाओं में भारत पर 1919 के करीब मध्य तक लिखते रहे। उसके बाद वह भी दरवाजा बंद हो गया। उसके बाद उन्हें भारतीय क्रांति में उपयोगी सिद्ध होने के लिए और तरीके ढूंढने पड़े। सदा ही कल्पनाशील और साहसिक होने के कारण उन्होंने शीघ्र ही इसका तरीका ढूंढ निकाला। अगले अध्याय में इसके परिणामों के बारे में वर्णन किया जाएगा।

8

भारत में वापसी व कारावास

राय हमेशा भारत लौटने तथा सक्रिय रूप से भारतीय स्वतंत्रता के संघर्ष में भाग लेने के लिए उत्सुक थे। मास्को जाने का सुझाव उन्होंने स्वीकार किया था क्योंकि वह भारत के रास्ते में पड़ता था। दूसरी कमिन्टर्न कांग्रेस के बाद उन्होंने ताशकंद में नियुक्त होने का इसलिए स्वागत किया क्योंकि इससे वे भारत के निकट आ गए थे। बाद में उन्होंने लेनिन की इस राय के कारण भारत जाने की इच्छा दबा दी थी कि वहां तब तक नहीं जाना चाहिए जब तक वे अपने साथ काम करने के लिए कुछ और कार्यकर्ता तैयार न कर लें। कुछ और साम्यवादी ग्रुपों की स्थापना कर लेने के बाद उनमें यह इच्छा तीव्र हुई। उन्होंने कई बार स्टालिन से अनुनय की कि उन्हें जाने दिया जाए। कहा जाता है कि वे तब उनको जाने देने के लिए तैयार हो गए जब वे अपना चीन का काम समाप्त कर लेंगे। पर उद्देश्य असफल रहा, राय का स्टालिन पर से प्रभाव हट गया और धीरे धीरे उन्हें कमिन्टर्न के घेरे से बाहर कर दिया गया। अब वे पूर्ण रूप से स्वतंत्र थे और वे जानते थे कि यदि वे वापस जाएं तो भारत के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। उन्होंने बड़े दुख के साथ यह भी देखा कि कैसे छठी कमिन्टर्न कांग्रेस की अति-वामपंथी मार्ग अपनाकर साम्यवादियों ने अपने को नष्ट कर लिया था और वामपंथी आंदोलन को भी बढ़ते देखा था। और यह सुनहरा अवसर था कि कांग्रेस को क्रांति के मार्ग पर आगे बढ़ा दिया जाए।

1930 के मध्य तक राय ने निश्चय कर लिया। उस समय तक युवा भारतीयों का एक समूह उनके बहुत निकट हो गया था जिन्होंने उनके दृष्टिकोण को स्वीकार किया था तथा जो उनके बहुत भक्त भी थे। वे साम्यवादी जिन्हें पहले भारत में और बाद में यूरोप में प्रशिक्षित किया गया था उन्होंने कमिन्टर्न के ही साथ रहना अधिक पसंद किया। उन्होंने राय के साथ संबंध तोड़ लिए और उनकी निंदा व भर्त्सना करने कमिन्टर्न के साथ मिल गए।

राय ने भारत जाने की योजना के बारे में अपने नए मित्रों से बातचीत की। इसको ठीक

समझा गया और तय हुआ कि राय के वहां पहुंचने की तैयारी करने के लिए तीन पहले चले जाएं। इन तीनों ने ही यह काम अपने हाथ में लिया था और वे थे तैयब शेख, बंबई के सुंदर कबाड़ी व लखनऊ के ब्रजेश सिंह। वे राय द्वारा तैयार किए गए एक घोषणापत्र के साथ लौटे जिसमें बताया गया था कि कैसे धीरे धीरे कांग्रेस द्वारा शुरू किए गए जन-आंदोलन को राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए क्रांतिकारी आंदोलन में बदला जाए जो सामाजिक क्रांति का पहला चरण बने। उनका तात्पर्य था कि इस घोषणापत्र को आम कांग्रेसियों से व युवक संघों तथा अन्य लोगों से स्वीकार करा लिया जाए।

राय बाद में दिसंबर 1930 के मध्य में भारत आए। वे दिसंबर 11 को जहाज से कराची उतरे और फिर बंबई की ओर रवाना हुए। वे नकली पासपोर्ट से यात्रा कर रहे थे और पुलिस की कड़ी नजरों से बचना था क्योंकि कानपुर कम्युनिस्ट कांस्प्रेसी केस का वारंट उनके नाम अब भी जारी था। ब्रिटिश पुलिस उनकी यूरोप की कार्यवाहियों को बराबर देखती रही थी। शीघ्र ही उन्हें मालूम हो गया कि राय भारत के लिए रवाना हो चुके हैं। भारतीय पुलिस को सूचना दे दी गई जिसने पूरे देश में उनकी तलाश शुरू कर दी।

राय जानते थे कि भारत लौटने पर उनका क्या होगा। वे जानते थे कि कुछ वर्ष उन्हें जेल में बिताने पड़ेंगे। वे जानते थे कि उन्हें स्वतंत्र रूप से व खुलेआम भारत की स्वतंत्रता के लिए काम करने का अवसर मिलने का यही भुगतान करना पड़ेगा। उनके जर्मन मित्रों को यह योजना पसंद न थी और उन लोगों ने उन्हें खतरा उठाने से रोकने की भरसक कोशिश की। राय ने उनकी सलाह पर कोई ध्यान नहीं दिया और जाने का निश्चय कर लिया। उन्हें आशा थी कि पुलिस के पकड़ने से पहले ही वह कुछ ठोस काम कर लेंगे और बुनियाद डाल लेंगे जिसपर छूटने के बाद काम कर सकेंगे। वे न अपने को पुलिस को सौपना चाहते थे और न गिरफ्तारी से बचने के लिए दूर दूर की जगहों में भटकना चाहते थे। राष्ट्र आंदोलन के बीच में रहना चाहते थे ताकि वे कुछ हद तक उसे प्रभावित कर सकें तथा अपने विचारों व कार्यवाही के तरीकों में ज्यादा लोगों को शामिल कर सकें।

राय सात महीनों तक गिरफ्तारी से बचे रहे। वे 21 जुलाई को बंबई में गिरफ्तार हुए। बंबई में राय डा. महमूद के नाम से रह रहे थे। उन सात महीनों में वह बंबई में तथा उत्तर प्रदेश के कुछ भागों में घूमे। कई कांग्रेसी व मजदूर संघ के नेताओं से मिले जिनमें जवाहरलाल नेहरू भी थे। उन्होंने कराची अधिवेशन में भाग लिया तथा वहां सुभाषचंद्र बोस से मिले और जवाहरलाल नेहरू से प्रसिद्ध कराची प्रस्ताव के मूल सिद्धांतों पर बातचीत की। उनका इसको लिखने में कोई हाथ नहीं था जैसा कि किसी समय विश्वास किया था किंतु उन्होंने ही नेहरू के सामने कांग्रेस के आर्थिक कार्यक्रम की आवश्यकता रेखांकित की थी। अपने गिरफ्तार होने से पहले जो उन्होंने अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य किया वह था बंबई व अन्य

स्थानों में राय दल को स्थापित करना। राय दल में कांग्रेस ने मजदूर संघ के तथा अन्य युवक आंदोलनों के युवा जोशीले कार्यकर्ता थे। यह नाम उन्होंने ग्रहण किया क्योंकि उन्होंने राय के कार्यक्रम को स्वीकार कर लिया था तथा वे उनके व्यक्तित्व व उपलब्धियों से बहुत प्रभावित हुए थे।

जब राय भारत लौटे वे पूर्णतया साम्यवादी थे। उन्होंने कमिन्टर्न से अपने को अलग कर लिया था परंतु साम्यवाद से नहीं। उनका इरादा देश में असली साम्यवादी पार्टी बनाने का था, ऐसी पार्टी जो यह जानती हो कि राष्ट्रीय आंदोलन द्वारा कैसे साम्यवाद की ओर बढ़ा जा सकता है। ऐसी पार्टी जो अपने लिए सोच सके व देश के मौजूदा हालातों के लिए सही कार्यक्रम व योजना को विकसित कर सके। जो साम्यवादी पार्टी थी और जिसे बनाने में किसी समय उन्होंने मदद की थी। वह सरकार के दमन व अति वामपंथी मार्ग जिस पर 1929 से वह चल रही थी, उन दो कारणें से छिन्न भिन्न हो चुकी थी। पार्टी के पुराने नेता मेरठ कम्युनिस्ट कांस्पेसी केस में फंसने के कारण जेल में थे और पार्टी का नेतृत्व युवा अनुभवहीन दलों के हाथ में था। कमिन्टर्न ने इन दलों को हिदायत दी थी कि वे बिना कोई प्रश्न पूछे उनके आदेशों का पालन करें। राय चाहते थे कि इस मृतप्राय पार्टी को शक्तिशाली संगठन बनाएं। पहला घोषणापत्र जो उन्होंने निकाला उसमें 'साम्यवादी पार्टी को संगठित करो' की पुकार थी। भारत की साम्यवादी पार्टी ने इसे अपनी उपस्थिति की ललकार समझा और अगले कुछ वर्ष वे अपना क्रोध व जहर राय तथा रायवादियों के विरुद्ध उगलते रहे। कमिन्टर्न धन-जन द्वारा उसको पूरा बढ़ावा देता रहा है। यह 'विश्वासघाती राय' को भारत में सफल देखने के पक्ष में कतई नहीं था। भारत लौटने के बाद और उसके कई वर्षों बाद तक उनका तगड़ा विरोध भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी, कमिन्टर्न व उसके अनुयायियों ने किया। ऐसा न था कि वे इसके लिए तैयार नहीं थे पर शायद यह नहीं सोचा था कि यह इतना कठोर तथा सांघातिक होगा।

साम्यवादी अंतर्राष्ट्र राय के भारत लौटने से खुश नहीं थे। इसे डर था जैसा गुप्तचर विभाग के प्रकाशन 'भारत में साम्यवाद' में लिखा है कि, "राय अपनी राजनैतिक दूरदर्शिता, संगठन करने व नेतृत्व करने की सामर्थ्य तथा इससे भी अधिक असाधारण व्यक्तित्व का बहुत अच्छा इस्तेमाल करेंगे तथा वामपंथियों को अपनी ओर आकर्षित करेंगे और इस प्रकार 'सरकारी' साम्यवादी आंदोलन को कमजोर बनाएंगे।"[2] इन परिणामों को रोकने के लिए 1930 व 1932 के दौरान इसने कई एजेंट भेजे। उनके पास काफी पैसा था जिसे उन्होंने भारतीय साम्यवादी पार्टी के इस्तेमाल के लिए दिया। तब भी साम्यवादी आगे न बढ़ सके। तब वे रायवादियों से अलग पहचान के लिए 'सरकारी साम्यवादी' कहलाए जाते थे क्योंकि रायवादियों को साम्यवादी कहा जाता था।

जब राय लौटे तो 'कानून तोड़ो' आंदोलन का जोर कम हो चुका था। राय दल ने राय के घोषणापत्र में बताए मार्ग के अनुसार आंदोलन करके व कांग्रेसियों से प्रचार करके इस पतन को रोकना चाहा। इस काम के लिए युवक संघ नवजवान-भारत सभाएं तथा भारत स्वतंत्रता की समितियां बनाई गईं। आखिर में गांधी-इरविन समझौते के परिणामस्वरूप 'कानून तोड़ो' आंदोलन समाप्त कर दिया गया। राय समझौते के विरुद्ध थे और उनके सुझाव पर अधिवेशन में एक संशोधन सामने रखा गया जिसमें समझौता रद्द करने के लिए कहा गया था। एक रायवादी तैयब शेख ने संशोधन के पक्ष में बड़ा जोशीला भाषण दिया, किंतु उसका किसी ने समर्थन नहीं किया। बाद में गांधी जी कांग्रेस के एकमात्र प्रतिनिधि के रूप में गोलमेज कांफ्रेस में शामिल हुए। रायवादी गोलमेज कांफ्रेस के विरुद्ध प्रचार करते रहे। प्रचार में मुख्य रूप से कहा गया था कि ब्रिटिश सरकार द्वारा बुलाए गए सम्मेलन से नहीं, बल्कि लोगों द्वारा चुनी गई विधानसभा को देश का संविधान बनाना चाहिए। राय यह देखकर खुश हुए कि उनके इस प्रचार से तथा अन्य कार्यों से कई वामपंथी कांग्रेसी उनके दल की ओर आकर्षित हो गए।

उत्तर प्रदेश में उत्तेजना फैली हुई थी। अनाज के दाम गिर जाने से किसानों की दशा खराब थी। जमींदारों को लगान देना उनके लिए कठिन हो गया था। नेहरू व अन्य लोगों की कोशिशों से कांग्रेस गांवों में फैल चुकी थी। उन्होंने किसानों की कठिनाइयों को उचित कहा और उनसे कहा कि एक खास रकम से ज्यादा न दें। यह 'लगान नहीं' आंदोलन सूबे में शुरू हो गया था। जब राय लौटे, कृषक आंदोलन तथा कांग्रेस को बदलने के लिए उन्होंने इसे स्वर्ण अवसर समझा। उन्होंने अपनी सेवाएं नेहरू व अन्य नेताओं को समर्पित कर दीं। वे लंबी यात्राओं पर उनके साथ गए। कई गांवों को देखा और बहुत सारे किसानों से मिले। वे खादी के कपड़ों में घूमते थे और बैनर्जी नाम से जाने जाते थे।

मजदूर संघ आंदोलन भी छिन्न भिन्न था जब राय लौटे। साम्यवादियों ने अखिल भारतीय मजदूर संघ कांग्रेस का विभाजन कर दिया था और बाद में संघों को तोड़ने व लाल संघों को बनाने के तरीकों से इस संघ को अशक्त बना दिया था। उन्होंने कई अनियंत्रित हड़तालें करवाईं जिससे मजदूर कमजोर हो गए। इस हालत को सुधारने के लिए राय ने मजदूरों की एकता के लिए आंदोलन शुरू किया। उन्होंने एक कार्यक्रम तैयार किया जिसका नाम था 'एकता मंच'। यह प्रयास तुरंत सफल नहीं हुआ पर बाद में जो एकता स्थापित हुई उसमें इस 'मंच' ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। गिरफ्तार होने से पहले राय एक काम में सफल हुए और वह था अखिल भारतीय मजदूर संघ-कांग्रेस को साम्यवादियों के चंगुल से निकालना। यह कलकत्ता में जुलाई 1931 में सालाना अधिवेशन में हुआ। साम्यवादी तब बाहर निकल गए और एक नई संस्था 'लाल मजदूर संघ कांग्रेस' बनाई। यह कुछ वर्षों तक बुरे हाल में रही।

राय ने जो कुछ भारत में देखा उससे वह खुश नहीं थे। कानून तोड़ो आंदोलन की तेजी व विस्तार का अखबारों से उन्होंने बहुत बढ़ा-चढ़ा कर अंदाजा लगाया था। वैसे भी अतिशयोक्तिपूर्ण विचार उनके मजदूरों की युद्ध शक्ति व जागृति के बारे में थे। उन्हें स्थिति की वास्तविकता के अनुकूल अपने को बनाना था और इस सत्य को स्वीकार करना था कि महात्मा जी का तमाम जनता पर बहुत ज्यादा प्रभाव है। उन्होंने समझ लिया कि उनका काम बहुत ही मुश्किल है पर वे साहस को खो देने वालों में से नहीं थे। उनके रास्ते में कई बाधाएं थीं। एक बाधा थी—सरकारी साम्यवादियों व उनसे प्रभावित लोगों का बड़ा विरोध। उन दिनों साम्यवाद व कमिन्टर्न का वामपंथियों के लिए बहुत आकर्षण था। दूसरी बाधा थी उनका खुलेआम गांधी कार्यक्रम व नेतृत्व का विरोध। इन बाधाओं के बावजूद वे काफी कुछ कर सके यद्यपि पुलिस लगातार उनके पीछे लगी हुई थी।

आखिरकार पुलिस उन्हें पा गई और जैसा पहले कहा जा चुका है वे बंबई में जुलाई 21, 1931 को गिरफ्तार कर लिए गए। उन्हें फौरन ही कानपुर साम्यवादी षड्यंत्र में भाग लेने के अभियोग के मुकदमे में कानपुर ले आया गया। उनका मुकदमा जेल में ही हुआ क्योंकि सरकार जनता के प्रदर्शनों से बचना चाहती थी। उन्हें कचहरी में बयान देने की इजाजत नहीं दी गई, हालांकि उसी समय मेरठ साम्यवादी कांस्प्रेसी केस के साम्यवादियों को लंबे चौड़े बयान कचहरी में देने की इजाजत दी गई थी और एक एक अक्षर लिखा जा रहा था।

बारह साल की देश निर्वासिन की सजा भी 1924 के चार साल की सजा के मुकाबले कठोर थी। अपील के बाद सजा घटाकर छह साल कर दी गई। साम्राज्यवाद अंत में अपने सबसे बड़े दुश्मन को कैद करने में सफल हुआ जिसकी तलाश उसे 1915 से थी। राय जेल में थे और यह सोचा गया कि अब वे अगले कुछ सालों में और 'गडबड़' करने के काबिल नहीं रहे।

यह आशा पूरी नहीं हुई क्योंकि सरकार ने राय की कुशलता और वार्डनों व अन्य जेल अधिकारियों की तथा साधारण व राजनैतिक कैदयों की सहानुभूति तथा समर्थन प्राप्त करने की क्षमता के बारे में ध्यान नहीं दिया था। जेल जाने के एक-दो हफ्ते बाद उन्होंने बाहर की दुनिया से संपर्क स्थापित कर लिया। संपर्क यद्यपि वार्डनों के बदलने तथा एक जेल से दूसरे जेल भेजे जाने के कारण कई बार टूटा भी, फिर भी किसी न किसी तरह उनकी सजा के समय यह बना रहा। राय ने इस संपर्क का पत्रों, घोषणापत्रों,लेखों यहां तक कि कई कई किताबों की हस्तलिपियों को बाहर भेजने में इस्तेमाल किया। 'चाइना इन रिवोल्ट' जो 1935 में एस.के. विद्यार्थी के उपनाम से छापी गई, जेल से चोरी-छिपे बाहर ले जाई गई थी। यह 1941 में राय के नाम से ही 'चीन में मेरे अनुभव' के शीर्षक से दुबारा प्रकाशित हुई। 'भारत में हमारा कार्य' जो भारत के मजदूर वर्ग की रायिस्ट क्रांति पार्टी का घोषणापत्र बना, उसे राय ने जेल

में ही लिखा था। वह चोरी-छिपे बाहर लाया गया था। अपनी रक्षा के लिए जिस बयान को देने की उन्हें इजाजत नहीं दी गई थी वह भी बाहर निकाल लिया गया था, 'माई डिफेन्स' नाम से छपा। जो पत्र उन्होंने बाहर भेजे उनमें सबसे प्रसिद्ध है 'कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के नाम पत्र'। इसका ब्यौरा है कि कुछ पत्र उन्होंने जवाहरलाल नेहरू को लिखे। कुछ औरों का भी जिक्र है। उन्होंने कुछ लेख भी भेजे जो पूना के 'मरहठा' व बंबई के 'एडवोकेट' में छपे। यह आवश्यक नहीं है कि उनकी इन गैर कानूनी कार्यवाहियों की पूरी फेहरिस्त दी जाए। ध्यान देने वाली बात केवल यह है कि वे या उनके साथी कभी भी पकड़े नहीं गए। जेल के अधीक्षक व दूसरे लोगों का कई लोगों पर शक था, उनमें से कई जनों को दूसरी जगह भेज दिया गया, उनके विरुद्ध कुछ भी सिद्ध नहीं हो सका। राय की कोठरी की भी कई बार तलाशी ली गई। कुछ समय के लिए लिखने की सहूलियतें भी खत्म कर दी गईं। पर कुछ भी उनके विरुद्ध प्रमाणित नहीं हो सका। उनके सह-अपराधियों में कुछ राजनैतिक बंदी और कुछ वार्डन तथा साधारण कैदी भी थे।इस साधारण कैदियों में कुछ बाद के वर्षों में राय से सभाओं और सम्मेलनों में मिलते रहते थे और राय बहुत आदर व स्नेह से उनसे मिलते थे। सामान्यतया राय एक सुशील कैदी थे। वे सब नियमों का पालन करते थे, जो काम उनको दिया जाता था, उसे नियम से पूरा करते थे। पर उन्होंने शुरू से ही एक नियम का पालन न करने का निश्चय कर लिया था—बाहरी दुनिया से संपर्क न रखने का नियम। इस नियम को तोड़कर ही वह छपने के लिए सामग्री बाहर भेज सके और जो उनका नेतृत्व चाहते थे उनका मार्गदर्शन कर सके।

कानूनी तौर से, राय एक महीने में एक पत्र लिख सकते थे। इसकी लंबाई भी निश्चित थी और कभी कभी कई अंश काट दिए जाते थे। यह पत्र वह अपनी मित्र व सहयोगिनी एलेन गांटशाह को लिखा करते थे जो राय के जेल से बाहर आने के बाद भारत आई और जिन्होंने बाद में उनसे विवाह किया तथा भारत को अपना घर बना लिया। एलेन ने उन पत्रों को संभाल कर रखा। वे 'जेल से लिखे पत्र' के नाम से 1941 में प्रकाशित हुए। 'द लैटर्स' अत्यंत आकर्षक पुस्तक है। इसमें राय के राजनीति से भिन्न मानव पक्षों पर प्रकाश डाला गया है। इससे जाहिर है, वह कितने सभ्य और संवेदनशील व्यक्ति थे और उसमें उनके विस्तृत ज्ञान व नाना प्रकार की रुचियां मिलती हैं।

जेल के जीवन से राय का स्वास्थ्य बुरी तरह नष्ट हो गया। उन्हें अपनी 'लौह-बनावट' पर गर्व था, लेकिन वे जेल में लगी सख्तियों को बरदाश्त न कर सके। सबसे ज्यादा असह्य गर्मी थी जो पहले तीन साल कानपुर व बरेली में वह झेलते रहे। उनके तथा भारत, यूरोप व अमेरिका उनके मित्रों द्वारा भेजे गए आवेदनों के बावजूद भी उन्हें पहाड़ों की ठंडी जगह नहीं भेजा गया। 1934 में वह इतने गंभीर रूप से बीमार पड़े कि गर्मियों के महीनों में उन्हें

अल्मोड़ा भेज दिया गया और गर्मी खत्म होने पर बरेली वापस बुला लिया गया। अगले वर्ष जब गर्मी शुरू हुई उन्हें देहरादून ले जाया गया और जेल से रिहा होने तक वहीं रखा गया।

राय हृदय रोग, छाती के दर्द व समय समय पर बुखार से पीड़ित रहते थे। भारत व विश्व के कई प्रसिद्ध व्यक्तियों ने जिनमें प्रसिद्ध वैज्ञानिक आइ-सराइन भी शामिल थे, भारत सरकार के पास कई प्रतिवेदन भेजे कि राय के साथ अच्छा व्यवहार किया जाए। जवाहरलाल नेहरू ने भी उनके मामले में रुचि दिखाई, पर सब बेकार साबित हुआ। जब तक उनका निर्णय नहीं हुआ था वे 'अ' क्लास कैदी थे, पर सजा होने पर उन्हें 'बी' श्रेणी का कैदी बना दिया गया। उनकी अपनी व उनके बाहर के दोस्तों की तमाम दरख्वास्तों के बाद भी उनकी श्रेणी नहीं बदली गई।

अपने बुरे स्वास्थ्य के बावजूद भी राय ने जेल में बहुत कुछ लिखा जितना कि कानूनी रूप से लिखने की छूट थी। लिखने के लिए उन्हें एक समय में एक जिल्दबंद कापी दी जाती थी जिसके पृष्ठ गिने हुए तथा हस्ताक्षर किए हुए होते थे। नई कापी पुरानी कापी के जमा करने के बाद ही दी जाती थी। यह किसी भी गंभीर अध्ययन के लिए एकदम अपर्याप्त था। इस कठिनाई के होने पर भी उन्होंने हजार पृष्ठों वाली नौ कापियां अपने लेखन से भरीं। छूटने पर वे सब कापियां अपने साथ ले आए। जो उन्होंने लिखा था उसका काफी बड़ा अंश पुस्तकों के रूप में प्रकाशित हुआ। फासिज़्म, मैटिरियलिज़्म, हिस्टोरिकल रोल आफ इस्लाम, आइडियल आफ इंडियन वोमनहुड इत्यादि कुछ पुस्तकें हैं जो उनकी हाथ से लिखी कापियों से छापी गईं। एक हिस्सा अभी तक नहीं छपा है। राय का यह लेखन आधुनिक विज्ञान के दार्शनिक परिणामों के बारे में है।

राय की गिरफ्तारी से राय का दल समाप्त नहीं हुआ। यह राजनैतिक व श्रमिक संघ क्षेत्रों में बढ़ता व पनपता गया। दल के कार्य के बारे में भारत के गुप्तचर ब्यूरो ने अपनी किताब 'साम्यवादी पार्टी का इतिहास' में इस प्रकार लिखा है, "जितने भी कार्यकर्ता यूरोप से उन्होंने भारत में तैयार किए थे वे सब कमिन्टर्न के प्रति वफादार रहे और उन्होंने राय को त्याग दिया। तब भी 1934 के अंत तक राय के नए अनुयायियों ने बहुत अच्छे परिणाम दिए। उन्होंने अखिल भारतीय श्रमिक संघ कांग्रेस में अपनी स्थिति को मजबूत बनाया, चालीस से अधिक मजदूर संघों को अपने हाथों में लिया और कलकत्ता में स्थायी दफ्तर स्थापित किया। अखिल भारतीय श्रमिक संघ कांग्रेस धीरे धीरे देश के श्रमिक संघ आंदोलन के नेता व संगठनकर्ता वाली पुरानी स्थिति दुबारा ग्रहण कर रही थी।" इसने राय की प्रशंसा ऐसे की, "यह राय की ही प्रतिभा थी कि अकेले भारत वापस आने पर इतने थोड़े समय में वे इतना कुछ करने में सफल हुए। अपने अनुयायियों को वह जेल से भी प्रेरित करते व उनका मार्ग प्रदर्शन करते थे। अगले वर्षों में भारत में साम्यवादी आंदोलन ने जो उन्नति की उससे स्पष्ट

हो गया कि जो पद्धति राय ने बनाई थी वह कितनी सही थी।"[3]

राय देश और विदेशों की राजनैतिक स्थिति के बारे में पूरी पूरी जानकारी रखते थे। उनके कारावास की अवधि में कई परिवर्तन हुए थे। उन्होंने उनके बारे में सोचा था और जो नई स्थिति बन गई थी उसको देखते हुए दिशा भी निर्धारित कर ली थी। छूटने के बाद हमेशा की तरह हालात को जानने के लिए उन्हें समय की जरूरत नहीं पड़ी। वे तुरंत ही निस्संकोच राजनीतिक कार्य जारी रखने के लिए कार्यक्षेत्र में कूद पड़े जिसे जेल की दीवारें भी रोकने में असमर्थ रही थीं।

9

कांग्रेस के भीतर व बाहर

20 नवंबर 1936 की सुबह राय को देहरादून जेल से पांच वर्ष और चार महीने की सजा काटने के बाद रिहा कर दिया गया। जेल के गेट पर चंद एक कांग्रेसी नेताओं ने उनका स्वागत किया, किंतु उनके दुर्बल स्वास्थ्य के कारण किसी प्रकार का प्रदर्शन नहीं किया गया।

छूटने के बाद राय को खुरशीद लाल के घर ले जाया गया जो म्युनिसिपैलिटी के चेयरमैन थे तथा प्रमुख कांग्रेसी नेता थे। वहां उन्हें नेहरू का संदेश मिला जिसमें उन्हें प्रांतीय राजनैतिक कांफ्रेंस में भाग लेने के लिए पहले बरेली आने और फिर उसके बाद इलाहाबाद में उनके घर में रहकर आराम व स्वास्थ्य लाभ करने के लिए बुलावा भेजा गया था। राय के कुछ सहयोगी भी जो देश के विभिन्न भागों के थे वहां उनसे मिलने के लिए तथा अपने बीच स्वागत करने के लिए एकत्रित हुए थे। उन सबसे मिलकर राय बहुत खुश हुए।

अखबारों के प्रतिनिधि भी राय से मिलने तथा उनकी तत्कालीन योजना एवं कार्यक्रम जानने के लिए उत्सुक थे। उनके आग्रह करने पर राय ने छोटा-सा वक्तव्य जारी किया जो इस प्रकार था (X)

"जेल में छह लंबे वर्ष पूरे करने के बाद इस बात की खुशी है कि मैं भारत के लोगों से कुछ शब्द कह सकता हूं। साम्राज्यवाद के सहयोगी उत्पीड़ित हैं उनसे मेरा संदेश है कि राष्ट्रीय कांग्रेस के झंडे के नीचे लाखों में एकत्रित होकर दृढ़ सेना की तरह अपनी लोकतंत्रीय स्वतंत्रता के लिए लड़ना चाहिए। इस लक्ष्य की, जिसको प्राप्त करने की हम सबमें तीव्र आकांक्षा है, हमें न केवल इसे साफ साफ देखने की आवश्यकता है, वरन संघर्ष के एक निर्धारित कार्यक्रम की भी जरूरत है। मैं चेष्टा करूंगा कि मैं स्वाधीनता के लिए आवश्यक परिस्थितियों को पैदा कर सकूं। मैं साथ ही यह कहना भी उचित समझता हूं कि समाजवाद या साम्यवाद--जिसका एक ही अर्थ है--हमारी आज की समस्या नहीं है। सच्चे समाजवादियों को समझना चाहिए यदि वे भारतीय स्वतंत्रता के संघर्ष में कोई भूमिका निभाना चाहते हैं तो

राष्ट्रीय स्वतंत्रता ही उनका तात्कालिक ध्येय होना चाहिए। सभी साम्राज्यवाद विरोधी शक्तियों को यह नारा अपनाते हुए एकत्रित हो जाना चाहिए कि हमें लोकतंत्रीय स्वतंत्रता को जनता की तथा जनता द्वारा बनाई गई सरकार की स्थापना करके प्राप्त करना है। राष्ट्रीय कांग्रेस ही सबका एक मोर्चा है। मैं कांग्रेस से औपचारिक रूप से संबद्ध नहीं हूं, परंतु इन सारे वर्षों में मैंने कांग्रेस को आमूल परिवर्तन से तथा उसे अधिक लोकतंत्रीय बनाकर अधिक से अधिक सशक्त बनाया है, ताकि इससे आगे मेरा कार्य सरल हो सके। मैं कांग्रेस का औपचारिक रूप से सदस्य बनूंगा। मैंने निश्चय किया है कि मैं भारत की जनता के सामने सिद्ध कर दूंगा कि साम्यवादी भारतीय राजनीति से अलग शक्ति नहीं हैं। वे भी इसी धरती के बेटे हैं जो भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के झंडे के नीचे भारतीय स्वतंत्रता की सेना में अग्रणी बनकर लड़ रहे हैं।''

उसी शाम राय राजनीतिक कांग्रेस में भाग लेने तथा नेहरू से मिलने बरेली रवाना हो गए। बरेली में उन्हें कांग्रेस का सदस्य बना लिया गया और उन्हें फैजपुर में होने वाले अधिवेशन के लिए प्रतिनिधि चुन लिया गया एवं अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी तथा उत्तर प्रदेश कांग्रेस कमेटी की कार्यकारिणी कमेटी के भी वे सदस्य बनाए गए। इस प्रकार राय का कांग्रेस में प्रवेश हुआ। वे अब तक लगातार साम्यवादियों को सजा देते रहे थे कि वे कांग्रेस में शामिल हो जाएं और उसमें रहकर वे इसे अधिक कर्मण्य बनाएं तथा इसमें आमूल परिवर्तन लाएं। इसी मसले को लेकर वे कमिन्टर्न से अलग हो गए थे क्योंकि वे इसके इस निर्देश को कि कांग्रेस का बहिष्कार किया जाए तथा इसका विरोध किया जाए, अति वामपंथी तथा दुस्साहसिक समझते थे। यह पहली बार था कि उन्हें कांग्रेस में शामिल होने के तथा इसमें रहकर कार्य करने का मौका मिला।

इसके बाद राय ने दिसंबर 1936 में हुए कांग्रेस के फिरोजपुर अधिवेशन में भाग लिया। नेहरू ने इसका सभापतित्व किया। अपने सभापति के वक्तव्य में नेहरू ने राय का विशेष उल्लेख किया तथा एक अनुभवी स्वतंत्रता सेनानी के रूप में कांग्रेस में उनके आने का स्वागत किया। राय को मंच पर ही स्थान दिया गया और नेताओं के खेमे में ही उन्हें ठहराया गया। अधिवेशन में राय ने विषय समितियों में संविधान सभा पर भाषण दिया। यह भाषण कांग्रेसी श्रोताओं के लिए असाधारण था। यह धीरे धीरे नपे-तुले शब्दों में दिया गया था जिसमें लोगों को उकसाने या उत्तेजित करने की कोई चेष्टा नहीं की गई थी। तर्कपूर्ण दृष्टि के लिए इसमें जोरदार अपील थी। राय ने अपने भाषण में बताया कि यदि सुधारों की अस्वीकृति को सफल बनाना है तो कैसे कांग्रेस की सत्ता को अपने हाथ में लेने के लिए निश्चय कर लेना चाहिए, कैसे कांग्रेस कमेटियों को सत्ता का अंग बन जाना चाहिए और स्वयं कांग्रेस को संविधान सभा के रूप में कार्य करना चाहिए। उन्होंने एक ऐसे ठोस कार्यक्रम की रूपरेखा प्रस्तुत की जिसमें उन्होंने विशाल जन-समुदाय में अपनी तात्कालिक मांगों के लिए राष्ट्रीय भाषण दिया।

इस भाषण का श्रोताओं पर गहरा प्रभाव पड़ा। वामपंथी बुद्धिजीवी जो वहां बड़ी संख्या में मौजूद थे, भाषण सुनकर बहुत ही आह्लादित हुए। उन्हें लगा जैसे राय ने उस क्रांति के मार्ग को खोल दिया जिसे वह अब तक खोज रहे थे।

फैजपुर में पहली बार राय की गांधी जी से आमने-सामने भेंट हुई। यह गैर-मैत्रीपूर्ण थी,किंतु जो बातचीत हुई उससे जो खाई दोनों को अलग कर रही थी, वह स्पष्ट हो गई। राय ने नम्रता से उस प्रार्थना सभा में जाने से इंकार कर दिया जिसमें उन्हें आमंत्रित किया गया था। इस बात ने एक प्रकार से उनका इस गांधी परिवार में प्रवेश निषिद्ध कर दिया जो कांग्रेस पर शासन कर रहा था। इस मुलाकात से राय का यह विश्वास और मजबूत हो गया कि एक वैकल्पिक नेतृत्व को बनाना अत्यंत आवश्यक है।

फैजपुर अधिवेशन के तुरंत बाद ही चुनाव अभियान आरंभ हो गया। चुनाव नई प्रांतीय विधानसभाओं के लिए किए जा रहे थे जिनको भारत सरकार अधिनियम 1935 के अनुसार स्थापित किया जा रहा था। कांग्रेस का वचन था कि वह 'रिफार्म' को भंग करेगी किंतु यह तय किया गया कि चुनाव बहिष्कार करने के बजाए लड़े जाएं। महाराष्ट्र व कर्नाटक में किए जाने वाले चुनाव अभियान में राय ने भाग लिया।

अप्रैल, 1937 में राय ने अपना साप्ताहिक पत्र 'इंडिपेंडेंट इंडिया' निकालना आरंभ किया। इस पत्र द्वारा वे प्रति सप्ताह राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं पर अपने विचार स्पष्ट व निष्कपट रूप से प्रकट कर सकते थे। नेहरू व बोस ने इस पत्र का स्वागत किया परंतु जब गांधी जी से पूछा गया तो उन्होंने राय को सलाह दी कि वे 'मूक सेवाएं' अर्पित करें। यह परामर्श नहीं स्वीकार किया गया। राय दल जो अब और बड़ा हो गया था राय के जेल से छूटने के बाद और भी सक्रिय हो गया। इसकी सदस्यता बढ़ गई तथा यह राजनीतिक एवं श्रमिक संघ क्षेत्र में बड़ी शक्ति बन गया।

लगभग इसी समय एलेन गौटशाक जिन्हें राय जेल से नियमित रूप से पत्र भेजा करते थे, भारत आईं। वह राय को स्थायी साहचर्य देने के ही इरादे से आई थीं। शीघ्र ही उन दोनों का विवाह हो गया और वह एलेन राय बन गईं। एलेन को राय ने न केवल स्नेही पत्नी के रूप में पाया वरन वे कुशाग्रबुद्धि, सहायिका तथा घनिष्ठ सहयोगिनी भी थीं।

इस वर्ष के अंत में राय ने तमिलनाडु एवं आंध्र प्रदेश का दौरा किया तथा सब जगह अपना यह संदेश दिया कि कांग्रेस को और सक्रिय एवं लोकतंत्रीय बनाया जाए। जनवरी 1938 में वे बंगाल गए। जिस प्रदेश में उनका जन्म हुआ था वहां वे अब बीस वर्षों के बाद पहली बार गए। उनका एक महान वीर के रूप में स्वागत किया गया और उनके भाषणों को जहां भी वे गए बड़ी तन्मयता से सुना गया। उनके आह्वान पर सैकड़ों वामपंथी बुद्धिजीवी कांग्रेस में शामिल हो गए। तत्पश्चात उन्होंने बिहार व उत्तर प्रदेश का दौरा बड़े पैमाने पर किया।

इस समय तक राय ने देहरादून में अपने लिए घर बना लिया था। यह स्थान 13, मोहनी रोड था। यह एक पुराना उजाड़ बंगला था जिसमें एक ऊंचे पेड़ों वाला बड़ा मैदान था किंतु उसमें तमाम झाड़ियां उगी हुई थीं। थोड़े ही समय में झाड़-झंखाड़ साफ कर दिए गए और मैदान को सुंदर बगीचे में परिवर्तित कर दिया गया। ये राय दंपत्ति का स्थायी निवास स्थान बन गया जहां वे अपने नियमित वार्षिक दौरों के बाद लौटते थे। यह स्थान शहर से दूर था और यहां पूर्ण शांति थी जैसा कि राय चाहते थे। यहां पर बाद के वर्षों में न केवल रायवादियों का ही बराबर आना-जाना रहता था, बल्कि नाना प्रकार के सामाजिक व राजनीतिक कार्यकर्ता तथा भारतीय व विदेशी विद्वान भी बहुधा जाया करते थे। प्रत्येक के लिए आने की स्वतंत्रता थी और जैसा भी साधारण सत्कार संभव था, किया जाता था।

कांग्रेस में कार्य आरंभ करने से पहले राय ने एक वक्तव्य द्वारा स्पष्ट कर दिया था कि वे किस मार्ग पर चलना चाहेंगे। बयान में कहा गया, "मेरे राजनैतिक कार्यों का उद्देश्य (जैसे ही स्वास्थ्य तथा अन्य बातों से ठीक होने पर उन कार्यों को आरंभ कर सकूंगा) राष्ट्रीय कांग्रेस को साम्राज्यवाद के विरुद्ध सफल युद्ध करने की शक्ति के रूप में सुदृढ़ करना होगा। साम्राज्यवादी बेड़ियों से स्वतंत्रता तथा देश को राजनैतिक व आर्थिक दृष्टि से जनतंत्रीय बनाना भारतीय समाज का उस रूप में पुनर्निर्माण के लिए ऐसी शर्तें हैं जिसमें जनसमुदाय की गरीबी और उसके दुखद सांस्कृतिक तथा नैतिक परिणामों के लिए कोई स्थान नहीं होगा।

दूसरे शब्दों में मैं प्रयत्न करूंगा कि कांग्रेस के उन तत्वों को आपस में मिला सकूं तथा सुदृढ़ बना सकूं जो यह समझ चुके हैं कि राष्ट्रीय स्वतंत्रता और बड़ी स्वतंत्रता के मार्ग का एक अनिवार्य मुकाम है। यह मेरा दृढ़ विश्वास है कि साम्राज्यवाद के विरुद्ध प्रभावकारी संघर्ष उन्हीं के नेतृत्व में किया जा सकता है जो क्रांतिकारी सामाजिक आदर्शों से प्रेरित हैं। मेरी यह राय है कि स्वतंत्रता के बारे में चर्चा मात्र हमें हमारे अभीष्ट लक्ष्य की ओर अधिक दूर नहीं ले जाएगी। हमारा तत्कालीन उद्देश्य समाजवाद नहीं है, राजनैतिक स्वतंत्रता व समाजवाद की स्थापना को इतिहास में विभाजित कक्षों में रखना भूल है। जन-साधारण के कल्याण की इच्छा करने वाले सब निष्ठावान लोगों को इस बात का एहसास करना चाहिए कि आर्थिक बुराइयां, जो भारतीय समाज की शक्तियों को खाए जा रही हैं, तब तक नहीं हटाई जा सकतीं जब तक उनके परिश्रम का एक बड़ा हिस्सा संपत्ति के उत्पादन करने वाले लोगों के अधिकार में नहीं रहता। इसलिए राष्ट्रीय स्वतंत्रता एक ऐतिहासिक उद्देश्य की पूर्ति कर सके इसके लिए आवश्यक है कि उसे एक ऐसी सरकार की स्थापना के रूप में परिभाषित किया जाए जो जन-साधारण को राजनैतिक अधिकार प्रदान करे। तात्पर्य यह है कि स्वतंत्रता की अवधारणा वास्तविक जनतंत्रीय के रूप में की जाए। मैं राष्ट्रीय आंदोलन के सामने जनतंत्रीय क्रांति का प्रस्ताव रखूंगा जिसके साथ कार्यविधि की एक ठोस योजना भी होगी। साम्राज्यवाद के विरुद्ध

प्रभावशाली संघर्ष का यह एकमात्र रास्ता है। जो संघर्ष में जुटे हैं उन्हें यह जान लेना चाहिए कि वे किस चीज के लिए लड़ रहे हैं। केवल प्रोपेगंडा और आंदोलन से हम बहुत दूर नहीं जा सकते। जन-साधारण के बीच राजनैतिक जागृति भी पैदा की जानी चाहिए। साम्राज्यवाद की विरोधी शक्तियों को भी ठोस मांगों के लिए लड़ने के लिए संगठित किया जाना चाहिए और उसे सर्वसाधारण के प्रभाव में लाना चाहिए। मैं इस उद्देश्य के लिए कार्य करुंगा।''[2]

इस वक्तव्य से कांग्रेस के दक्षिणपंथी नेता विशेष प्रसन्न नहीं हुए। वे राय के गांधीवाद विरोध से परिचित थे। इस कारण राय का कांग्रेस में प्रवेश उन्हें विशेष अच्छा नहीं लगा था। पहले कुछ सप्ताह बाद वे उन्हें संदेह की दृष्टि से देखने लगे। संदेह शीघ्र विद्वेष में बदल गया। राय ने यह कई स्थानों पर जहां वे गए अनुभव किया। राय के विभिन्न समस्याओं के विषय में दिए गए सुझावों की अच्छाइयों पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था। उन्हें साधारणतया इसी आधार पर अस्वीकृत कर दिया जाता था कि वे 'हमारी नीति' के अनुकूल नहीं हैं।

विचित्र बात यह थी कि राय को संगठित वामपंथी गुटों से भी ऐसे ही विरोध का सामना करना पड़ा। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी उस समय कांग्रेस में जोर पकड़ रही थी। यह एक विचित्र राजनैतिक स्थिति थी। मूल समस्याओं पर भी इन नेताओं में आपस में मतभेद था। यह अपने को सोशलिस्ट पार्टी कहते थे किंतु कई गांधीवाद पद्धतियों जैसे चुनावों, संविधानों एवं कार्यालयों के बहिष्कार में विश्वास रखते थे। इस पार्टी का कांग्रेस के दक्षिणपंथी नेतृत्व से कोई आधारभूत मतभेद नहीं था। उन्हें ऐसे नेतृत्व की आवश्यकता थी जो गांधी मार्ग को और अधिक उत्साह से अपना सके। यह पार्टी राय से इसलिए नाराज थी क्योंकि राय चाहते थे यह सोशलिस्ट पार्टी के रूप में कार्य न करे बल्कि यह कांग्रेस की ही वामपंथी शाखा हो और वैकल्पिक नेतृत्व को बनाने के लिए कार्य करे। ये और खिन्न इसलिए हो गए कि कई राय अनुयायी जो राय के कहने से पार्टी में शामिल हुए थे, राय के कहने पर पार्टी से उनके दल धीरे धीरे करके पार्टी से अलग हो गए। शीघ्र ही राय के कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के बारे में ये विचार थे, ''कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी कांग्रेस के या तो वामपंथियों की संस्था है या वास्तविक मार्क्सवादी सोशलिस्ट पार्टी है। यदि यह पहले वाली पार्टी है तो यह सही सोशलिस्ट पार्टी नहीं हो सकती। यदि यह दूसरे प्रकार की पार्टी है तब इसको कम्युनिस्ट पार्टी वाला संगठन एवं कार्य योजना अपनानी चाहिए। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी सुधारवादी समाजवाद जनतंत्रीय पार्टी बनती जा रही है। एक ओर कांग्रेस के वामपंथी संगठन की सहायता भी नहीं करती है दूसरी ओर यह साम्यवादी पार्टी की बढ़ोतरी को रोकती है।''[3]

यह तर्कयुक्त स्पष्ट सूत्रीकरण कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी को स्वीकृत नहीं था। वर्षों तक यह तब तक दो विकल्पों के बीच मंडराती रही जब तक कि वर्षों बाद इसे कांग्रेस के बाहर न निकलना पड़ा।

कम्युनिस्ट पार्टी वाला गुट राय के अधिक विरुद्ध था। इसे राय का कांग्रेस के ऊपर दिनों-दिन बढ़ता प्रभाव अच्छा नहीं लगा। जब राय ने कांग्रेस में प्रवेश किया, कम्युनिस्ट पार्टी ने मास्को के निर्देशानुसार कांग्रेस का विरोध करना छोड़ दिया था तथा इसमें सम्मिलित रह कर कार्य करना आरंभ कर दिया था। राय ने भी घोषित कर दिया था कि सातवीं कांग्रेस द्वारा प्रणाली परिवर्तन के बाद उनका कमिन्टर्न से कोई मतभेद नहीं रह गया था। इन परिस्थितियों में कम्युनिस्ट पार्टी को चाहिए था कि वह राय को सहयोग देती किंतु वैसा नहीं हुआ क्योंकि मास्को को यह सहय नहीं था कि राय की विचारधारा स्वतंत्र विचारधारा हो। परिणामस्वरूप राय कांग्रेस में जो कार्य कर रहे थे उसमें कम्युनिस्ट पार्टी को कोई मदद नहीं मिली। स्वतंत्रता की युद्धनीति एवं प्रणाली के प्रश्नों पर आपस में गंभीर मतभेद थे। दोनों कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी तथा कम्युनिस्ट पार्टी तथा अन्य वामपंथी सरकारी पद स्वीकार करने के विरुद्ध थे। राय के लिए यह एक साधारण मसला था किंतु उनकी यह भी राय थी कि यदि किसी निश्चित योजना को लेकर पदों को स्वीकार किया जाए तो इसको आम जनता को उकसाने, गतिशील व संगठित करने के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है। सामूहिक संबंधन मतभेद का एक और विषय था। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी व कम्युनिस्ट पार्टी चाहती थी कि श्रमिक तथा किसान कांग्रेस में व्यक्तिगत रूप से सम्मिलित न हों वरन अपने संगठनों द्वारा उनका सामूहिक संबंधन हो। राय व्यक्तिगत सदस्यता के पक्ष में थे क्योंकि उनका विचार था कि सामूहिक संबंधन कांग्रेस को कमजोर बना देगा। पहले वह सामूहिक संबंधन के पक्ष में थे परंतु बाद में उन्होंने गंभीर रूप से विचार करने के उपरांत अपने दृष्टिकोण को बदल दिया। एक और मतभेद किसान सभाओं के संगठन के प्रश्न पर था। राय का दृष्टिकोण था कि गांवों की कांग्रेस कमेटियां ही किसान सभा के रूप में कार्य करें जबकि और लोग चाहते थे कि किसान सभाएं स्वतंत्र संगठन हों। सबसे महत्वपूर्ण मतभेद नेतृत्त्व के प्रश्न पर था जबकि राय ने वैकल्पिक नेतृत्व पर जोर दिया। दूसरे लोग केवल मौजूदा नेतृत्व में थोड़ा-बहुत परिवर्तन चाहते थे। इन्हीं मतभेदों के कारण राय गुट व कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के बीच किसी सर्वमान्य दृष्टिकोण की संभावना प्रायः समाप्त हो गई।[4]

1938 में सुभाषचंद्र बोस के महात्मा गांधी की इच्छा के विरुद्ध भी सभापति चुने जाने पर कांग्रेस में एक संकट की स्थिति उत्पन्न हो गई। पुराने अभिरक्षक का उनको सहयोग देने से मना करने पर राय ने इसे एक अच्छा अवसर समझा कि कांग्रेस में एक वैकल्पिक नेतृत्त्व की स्थापना की जाए। कांग्रेस सोशलिस्ट व कम्युनिस्ट पार्टी ने उनके इस दृष्टिकोण को स्वीकार नहीं किया। बाद में बोस ने इस्तीफा दे दिया और पुराने गांधीवादी नेतृत्व का संस्था पर फिर से नियंत्रण हो गया। इसने राय को प्रोत्साहित किया कि कांग्रेस में जो उनके अनुयायी थे उन्हें एकत्रित करके एक नई संस्था बनाएं। इसका नाम 'लीग आफ रेडिकल कांग्रेस मैन'

रखा गया। इसका प्रारंभिक सम्मेलन जून 1938 में पूना में हुआ। इसका वही कार्यक्रम था जो कांग्रेस का था और इसने इस बात पर जोर दिया कि उस कार्यक्रम को पूरा करने के लिए सशक्त कार्यवाही की जाए तथा नेतृत्व में परिवर्तन किया जाए। इस लीग को पूरे देश से काफी समर्थन प्राप्त हुआ। बाद में बोस ने फारवर्ड ब्लाक की स्थापना की। आरंभ में यह आशा थी कि इससे कांग्रेस के सभी वामपंथी गुट एक हो जाएंगे। वैसा नहीं हुआ और यह एक और वामपंथी गुट बन गया।

1940 में राय ने कांग्रेस के सभापति पद का चुनाव लड़ा। यह चुनाव उन्होंने जीतने के उद्देश्य से नहीं बल्कि असहमत तत्वों के इस अधिकार की पुष्टि के लिए लड़ा था कि वे संस्था के सबसे बड़े पद के लिए लड़ सकते हैं। वैकल्पिक नेतृत्व की आवश्यकता के आधार पर ही उन्होंने चुनाव लड़ा था। दूसरी वामपंथी संस्थाओं ने उन्हें समर्थन नहीं दिया फिर भी चुनाव में उन्हें दस प्रतिशत वोट प्राप्त हुए।

राय कांग्रेस में अपने कार्य को बहुत महत्व देते थे किंतु वही काम एकमात्र ऐसा नहीं था जिसकी ओर वे ध्यान देते थे। उन्होंने मजदूर आंदोलन की ओर तथा जनता के उस आंदोलन की ओर ध्यान दिया जो प्रांतों में उत्तरदायी सरकार बनाने के लिए चल रहा था। वे विद्यार्थियों तथा युवकों के संगठनों के संपर्क में भी थे। उन्होंने उनके बीच मार्क्सवाद, साम्यवाद तथा सामाजिक क्रांति पर कई भाषण दिए। उन्होंने नवजागरण आंदोलन पर विशेष ध्यान दिया क्योंकि उनका विश्वास था कि राजनीतिक आंदोलन की सफलता के लिए तर्कसगंत वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास होना अनिवार्य है। उन दिनों राय अकेले राजनैतिक नेता थे जिन्होंने वैचारिक क्रांति की आवश्यकता पर जोर दिया। उन दिनों राजनैतिक लेखन उन्होंने बहुत किया। उनमें से प्रमुख था—फासिज़्म, रोल आफ इस्लाम, अवर प्राब्लम्स तथा लैटर्स टु सी.एस.पी.।

युद्ध के बादल क्षितिज पर कई वर्षों से मंडरा रहे थे। कइयों ने जिनमें राय भी थे इन्हें देखा था और लोगों को युद्ध के संकट के बारे में चेतावनी दी थी। यह बादल सितंबर 1939 में अचानक फट पड़ा और संसार युद्ध के पंजे में गिरफ्तार हो गया। युद्ध जो छिड़ा वह युद्ध नहीं था जिसका राय तथा अन्य लोगों ने पूर्वानुमान लगाया था। उनका अनुमान था कि यह युद्ध नाज़ी जर्मनी का साम्राज्यवादी देश इंग्लैंड व फ्रांस की सहायता तथा सहयोग से सोवियत रूस के विरुद्ध साम्राज्यवादी युद्ध होगा। युद्ध जो छिड़ा वह साम्राज्यवादी शक्तियों के ही बीच था, नाज़ी जर्मन व तानाशाह इटली एक ओर तथा इंग्लैंड व फ्रांस दूसरी ओर थे। ऐसे युद्ध की आशा नहीं की गई थी और यह सरल नहीं था कि इसकी सामाजिक विशेषता और महत्व को पहचाना जा सके।

देश की वामपंथी कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी, कम्युनिस्ट पार्टी तथा फारवर्ड ब्लाक की

दृष्टि से यह स्पष्टतया साम्राज्यवादी युद्ध था क्योंकि इसमें इंग्लैंड सम्मिलित था। अपनी ब्रिटिश विरोधी भावनाओं के कारण उनका निस्संदेह विचार था कि इस युद्ध का किसी भी कीमत पर विरोध किया जाए। यह एक ऐसा अवसर था जिससे भारत अवश्य ही अपनी स्वतंत्रता प्राप्त कर सकता था। कम्युनिस्ट पार्टी भी इन्हीं विचारों वाले गुट में तब तक रही जब तक हिटलर ने जून 1941 में रूस पर आक्रमण न कर दिया। उन सबने कांग्रेस से आग्रह किया कि वह युद्ध विरोधी आंदोलन आरंभ करें।

गांधी जी की प्रथम प्रतिक्रिया थी कि इंग्लैंड को नाज़ी जर्मन के विरुद्ध बिना शर्त समर्थन दिया जाए। नेहरू का भी बहुत कुछ यही मत था, क्योंकि वह पूर्ण रूप से तानाशाही के विरोधी थे और कई वर्षों से वह इंग्लैंड तथा फ्रांस से आग्रह कर रहे थे कि वे तानाशाही विरोधी युद्ध आरंभ करें। ये आरंभिक प्रतिक्रियाएं समय के साथ साथ गांधी जी की अहिंसा के कारणों से तथा नेहरू की राजनीति के कारणों से संयमित होती गईं। उन्हें जनता की उन ब्रिटिश विरोधी भावनाओं का भी ध्यान रखना था जो मित्र राष्ट्रों की सेनाओं की प्रत्येक हार पर और भारत सरकार का लोगों से समर्थन प्राप्त करने के लिए कौशल से कार्य न करने पर और भी प्रचंड होती जा रही थीं। वायसराय का भारत को युद्ध में केंद्रीय विधानसभा अथवा जनता के नेताओं से पूछे बिना सम्मिलित करने के विरोध स्वरूप कांग्रेस ने मंत्री पदों से त्याग देना आरंभ किया। अगली स्थिति प्रतिबंधित सहयोग की थी। वायसराय और ब्रिटिश सरकार ने शर्तों को पूरा करना नामंजूर कर दिया और इस प्रकार कांग्रेस को संघर्ष की उस दिशा में जबरन जाना पड़ा जिसका परिणाम अगस्त 1942 का भारत छोड़ो आंदोलन था। यहां यह बताना आवश्यक नहीं है कि कौन-सा वह टेढ़ा मार्ग था जिसका अंत यह आंदोलन था।

जो रास्ता कांग्रेस ने अपनाया था वह राय को न तो पसंद था और न ही उन्हें कांग्रेस का युद्ध के प्रति रवैया। अपनी प्रतिक्रिया को उन्होंने 6 दिसंबर को जारी किए बयान में बताया, "सभी स्वतंत्रता प्रेमी लोग ब्रिटिश सरकार को यह निर्णय लेने के लिए बधाई देंगे (यद्यपि निर्णय देर से लिया गया है) कि उस हिटलरवाद को खत्म कर दिया जाए जिसे वह अब तक प्रोत्साहित कर रही थी। यदि यह निर्णय पहले लिया गया होता तो कई यूरोपीय देशों की स्वतंत्रता सुरक्षित रखी जा सकती थी।"[5] अगले कुछ महीने वह कांग्रेसी नेताओं को इस बात के लिए राजी करने की कोशिश करते रहे कि वे युद्ध के प्रति इतना विरोधी रवैया न रखें। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य के रूप में, उन्होंने कांग्रेस सभापति को लिखा और कांग्रेस को संघर्ष की ओर बढ़ने से रोकने के लिए उन्होंने कई कदम उठाए। वे सफल नहीं हुए और इसी के साथ उनका कांग्रेस से संपर्क समाप्त हो गया।

अपने सहयोगियों को समझाना भी राय के लिए कठिन सिद्ध हुआ। उनको शिक्षित करने के लिए राय ने अक्तूबर में युद्ध पर निबंध लिखा जिसमें स्पष्ट किया गया था कि कैसे

यह साम्राज्यवादी नहीं वरन परस्पर संहारक युद्ध था जिस पर लेनिन का कथन कि साम्राज्यवादी युद्ध का विरोध ही लागू नहीं किया जा सकता। यह स्पष्ट किया गया कि यदि लड़ाई जारी रहेगी तो इसके द्वारा हिटलरवाद की पराजय हो सकती है और इस प्रकार कोई भी युद्ध विरोधी आंदोलन उन देशों में जो हिटलर के विरुद्ध लड़ रहे हैं, निश्चय ही हानिकारक होगा। इस समय तक युद्ध ऐसी स्थिति तक पहुंच गया जिसे बनावटी स्थिति कहा जा सकता है जिसका परिणाम था किसी निर्णायक स्थिति पर न पहुंचना। अप्रैल 1940 के आरंभ तक हिटलर ने अपने तूफानी हमले शुरू कर दिए थे और जून के अंत तक करीब पूरा पश्चिमी यूरोप जीत लिया था। उन देशों की सब स्वतंत्र सस्थाएं दबा दी गईं और कठपुतली शासन स्थापित किया गया ताकि उनके साधनों से युद्ध जीता जा सके। इंग्लैंड ही केवल युद्ध क्षेत्र में रह गया था और लगता था सारी दुनिया से स्वतंत्रता व जनतंत्र का अंत होने वाला है। यूरोप के इन भयंकर परिणामों का राय पर गहरा असर पड़ा। उन्होंने समझ लिया कि यह युद्ध जनता का तानाशाही के विरुद्ध युद्ध है और समस्त शक्ति से इस जनयुद्ध की सफलता के लिए जूझना है। मई के अंत में देहरादून में हुए एक अध्ययन शिविर में उन्होंने जो कहा उससे उनके मन की तीव्र व्यथा स्पष्ट हो जाती है, "हर सुबह मैं कांपते हुए अखबार खोलता हूं। मेरे मन में साम्राज्यवादी फ्रांस या ब्रिटेन के लिए कोई स्नेह नहीं है किंतु मैं यूरोप के ऊपर तानाशाही स्थापित होने की संभावना से ही आतंकित हो उठता हूं। जर्मनी में तानाशाही के उत्थान के कारण एक पीढ़ी तक के लिए क्रांति रुक गई। यदि तानाशाही सारे यूरोप पर अधिकार जमाने में सफल हो जाती है तो क्रांति सर्वदा के लिए समझिए विदा ले लेगी और साथ ही भारतीय स्वतंत्रता को भी नमस्कार।"[6]

उस समय राय ने कांग्रेस को सुझाव दिया कि फ्रांसीसी क्रांति दिवस 14 जुलाई को पूरे देश में फ्रांस, जिसे कभी हिटलर ने जीता था, के प्रति सहानुभूति व भाईचारा प्रकट करने के लिए मनाया जाए। सुझाव अनुचित कहकर नकार दिया गया। इसके बाद कहा गया कि तानाशाही के विरुद्ध युद्ध में सक्रिय भाग लिया जाए। प्रस्ताव पर कोई विचार नहीं किया गया।

लीग आफ रेडिकल कांग्रेस मैन ने तब निर्णय किया कि 1 सितंबर को जिस दिन युद्ध की घोषणा का वर्ष पूरा होता था तानाशाही के विरुद्ध प्रदर्शन किए जाएं। कांग्रेस ने उन्हें मना किया। रेडिकल्स के प्रदर्शन करने पर उनके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही की गई। इसी आधार पर उत्तर प्रदेश कांग्रेस कमेटी ने राय को कांग्रेस से निकाल दिया। बाद में निष्कासन रद्द कर दिया गया तथा राय को इस्तीफा देने की अनुमति दे दी गई। यह सब कमिन्टर्न से संपर्क टूटने के लगभग ग्यारह वर्ष बाद हुआ। दोनों ही बार उनका संपर्क इसीलिए टूटा क्योंकि वह स्वतंत्र रूप से सोचना चाहते थे और उसी मार्ग पर चलना चाहते थे जिसे वह ठीक समझते थे।

10

युद्ध व क्रांति

कांग्रेस से अलग हो जाने के बाद 'लीग आफ कांग्रेस मैन' 'रेडिकल डेमोक्रेटिक पार्टी' में बदल गई। इसका प्रारंभिक सम्मेलन बंबई में हुआ। राय ही इस पार्टी के मित्र, मार्गदर्शक तथा चिंतक थे। उनका विचार था कि इसे जनवादी पार्टी के रूप में विकसित किया जाए। वे जनवादी पार्टी की कामना बहुत दिनों से कर रहे थे। कई वर्षों तक वे आशा करते रहे थे कि कांग्रेस ही यह रूप ले लेगी। इसी परिवर्तन को लाने के लिए वह कार्य करते रहे थे। यह आशा तब समाप्त हो गई जब कांग्रेस ने तानाशाही विरोधी युद्ध का समर्थन करने से इंकार कर दिया। परंतु जन पार्टी की आवश्यकता तब भी बनी हुई थी। राय ने आशा की कि रेडिकल डेमाक्रेटिक पार्टी ही यह भूमिका अदा करेगी।

युद्ध के वर्षों में राय के लिए व्यक्ति की या संस्था के प्रगतिवादी गुण की एकमात्र परीक्षा युद्ध के प्रति बने रवैये द्वारा ही हो सकती थी। युद्ध उस समय की महान घटना थी। सारे संसार का भाग्य इस पर निर्भर करता था। जो भी युद्ध का समर्थन कर रहा था व इसकी सफलता के लिए कार्य कर रहा था वह प्रगतिवादी था जबकि दूसरे प्रतिक्रियावादी थे तथा प्रगति के शत्रु थे। इस कसौटी पर विंस्टन चर्चिल जो ब्रिटिश युद्ध के नेता व संगठनकर्ता थे प्रगतिवादी व क्रांतिकारी थे जबकि गांधी जी, नेहरू तथा कांग्रेस दूसरे वर्ग के थे। इसलिए राय को इसका कोई खेद नहीं था कि वे युद्ध जीतने के लिए ब्रिटिश या भारत सरकार की सहायता अथवा उनके साथ मिलकर काम कर रहे थे। दूसरी ओर उन्होंने इसे अपना कर्तव्य समझा कि कांग्रेस व इसके नेताओं की आलोचना की जाए और उनकी गलतियों को बताया जाए। इन कारणों से वह बहुत अप्रिय हो गए। उन्हें बहुत बुरा-भला कहा गया तथा उनकी विद्वेषपूर्ण निंदा की गई। किंतु इससे वे तनिक भी विचलित नहीं हुए। वे अपने कर्तव्य मार्ग पर, बिना उन अपशब्दों पर ध्यान दिए जो उन पर बरसाए जा रहे थे, चलते रहे।

राय के लेखों के इन दो उद्धरणों से उनकी गहन संवेदना का आभास मिल सकता

है। उन्होंने एक अवसर पर लिखा "हम तानाशाही की पराजय इसलिए चाहते हैं, क्योंकि हम क्रांतिकारी हैं, क्योंकि हम जानते हैं कि तानाशाही की पराजय ही साम्राज्यवाद को कमजोर बनाएगी। जरा एक क्षण को सोचिए : यदि तानाशाही विजयी होती है तो क्या होगा ? एक ऐसी स्थिति बन जाएगी जिसमें सारे संसार की क्रांतिकारी शक्तियां दबा दी जाएंगी और भारतीय स्वतंत्रता का आंदोलन भी संकट में पड़ जाएगा। इसलिए हम नहीं चाहते हैं कि तानाशाही की जीत हो। यदि सचमुच हम तानाशाही का विनाश चाहते हैं तो हम इसे नष्ट करने के लिए क्यों नहीं सब कुछ करते ?[1]

एक और मौके पर उन्होंने लिखा—"तानाशाही के विरुद्ध लड़ाई ही उन सबका वर्तमान उद्देश्य होना चाहिए जो स्वतंत्रता व जनतंत्रवाद के लिए लड़ रहे हैं। ऐसी कोई भी नीति जो इसे लीग से अलग नहीं समझती गलत है। तानाशाही एक ऐसा माध्यम है जो उस व्यवस्था को बढ़ावा दे रहा है जिसका सारे संसार में पतन हो चुका है। इसके विनाश से पूरी व्यवस्था ढह जाएगी। स्वतंत्र भारत तब उन स्वतंत्र लोगों के संसार में अपना उचित स्थान ले सकेगा। जो एक ऊंची सभ्यता के निर्माण में लगे हुए हैं। इसलिए भारत को हमारे प्रति साम्राज्यवादी ब्रिटेन के रवैए के बावजूद भारतीय स्वतंत्रता के लिए लड़ने वाले लोगों को ब्रिटिश जनतंत्रवाद को ब्रिटिश साम्राज्याद से भिन्न समझते हुए एक ही उद्देश्य के लिए सहयोग देना चाहिए।"[2] राय का युद्ध में समर्थन देने का कारण कुछ हद तक उनकी यूरोप की स्वतंत्रता व जनतंत्रवाद की स्थिति के लिए चिंता थी। नेहरू को छोड़कर और किसी भी राष्ट्र नेता के मन में यह चिंता नहीं थी। इसलिए जिस दिशा की ओर राष्ट्र आंदोलन बढ़ रहा था उससे नेहरू प्रसन्न नहीं थे किंतु वह इससे अलग भी नहीं हो सकते थे। राय अपना मार्ग चुनने के लिए अधिक स्वतंत्र थे। राय को इस संभावना से अत्यधिक कष्ट हुआ कि तानाशाही की विजय के परिणामस्वरूप यूरोप में बर्बरता की स्थिति हो जाएगी। ये वे अंधकारमय दिन थे जब यूरोप हिटलर के चरणों में आ गिरा था। जो मार्मिक लेख उन दिनों राय ने यूरोप की दशा वर्णित करते हुए तथा इससे निकलने का सुझाव देते हुए लिखे, उन सबको बाद में "व्हिदर यूरोप" नामक पुस्तक में छापा गया और बाद में कुछ परिवर्तनों के साथ उनकी एक और बड़ी पुस्तक "रशियन रेवूल्यूशन" में उनका संकलन कर दिया गया।

इन सब बातों के बावजूद राय भारत स्वतंत्रता की समस्या की उपेक्षा नहीं कर रहे थे। उनका कहना था कि भारत केवल स्वतंत्र संसार में ही स्वतंत्र रह सकता है। यदि तानाशाही की विजय होती है तो भारत स्वतंत्र नहीं होगा। ब्रिटिश शासकों के स्थान पर जर्मन या जापानी शासक आ जाएंगे। दूसरी ओर तानाशाही के विरुद्ध सफल संघर्ष से साम्राज्यवाद इतना कमजोर हो जाएगा और ऐसी सामाजिक शक्तियां उभर आएंगी कि ब्रिटेन के लिए भारत को और अधिक परतंत्रता में रखना असंभव हो जाएगा।

उन्होंने उस समय लिखा, "यदि तानाशाही जीतती है, न केवल संसार पूरे तौर से बर्बाद हो जाएगा वरन संसार के साथ ही भारत भी बर्बरता के गर्त में गिर जाएगा। इसलिए न केवल संसार की स्वतंत्रता के लिए, न केवल विदेशों में तानाशाही के शिकार बने हुए लोगों के लिए बल्कि हमारी अपनी स्वतंत्रता के संघर्ष की संभावित सफलता के लिए हमें प्रण करना है कि सबकी स्वतंत्रता के लिए जो ये सबसे बड़ खतरा है उसे नष्ट किया जाए।"[3] उन्होंने कहा कि "तानाशाही के विरुद्ध लड़ाई हमारी स्वतंत्रता की लड़ाई है और इसको सभी भारतीयों का समर्थन मिलना चाहिए।" जिस बात को राय ने पहले ही कह दिया था वह सच साबित हुई। परंतु उस समय राष्ट्रवादियों द्वारा इस पर विश्वास नहीं किया गया।

उस समय देश में लोगों की भावनाएं अंग्रेजों के प्रति खास तौर से विरोधपूर्ण थीं और तानाशाही के पक्ष में थीं। ये भावनाएं कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी, कम्युनिस्ट पार्टी, फारवर्ड ब्लाक तथा दूसरे वामपंथी एवं कांग्रेसियों के उग्र राष्ट्रवादियों द्वारा भड़काई गई थीं। इनको युद्ध के आरंभिक वर्षों में ग्रेट ब्रिटेन की भारी पराजय से तथा कांग्रेस द्वारा की गई किन्हीं भी मांगों को भारत सरकार द्वारा न मानने से और प्रोत्साहन मिला। सरकार को न केवल कांग्रेस पर संदेह था बल्कि रेडिकल्स जैसे औरों पर भी था जो लड़ाई का बिना किसी शर्त समर्थन कर रहे थे। इस स्थिति का हवाला देते हुए एक अवसर पर राय ने कहा,"आज हम एक तरह से एक ओर खाई और दूसरी ओर गहरे समुद्र के बीच खड़े हैं। संकीर्ण विचार वाले राष्ट्रवादी हमारी लगातार निंदा कर रहे हैं क्योंकि वे न तो समस्याएं समझते हैं न ही मान्यताओं के खतरे में पड़ने का महत्व समझते हैं। दूसरी ओर सरकार हमें संदेह की दृष्टि से देखती है क्योंकि हम खुलेआम क्रांतिकारी हैं। किंतु अपने विश्वासों से मिलने वाली हिम्मत से तथा अपने स्पष्ट लक्ष्य से हम दोनों खतरों के बीच की नदी को साफ़ पार कर जाएंगे।"[4] उन दिनों समय समय पर अफवाह फैलती रहती थी कि राय को वायसराय की कार्यकारिणी परिषद में सम्मिलित किया जा रहा है। वे अफवाहें गलत साबित हुईं किंतु अपने अतिप्रभावपूर्ण व्यक्तित्व तथा कठिन कार्य से वह सरकार के कुछ महत्वपूर्ण लोगों का विश्वास प्राप्त करने में सफल हो गए। इससे उनको अपना काम कुछ अधिक स्वतंत्रता से तथा तेजी से करने में सुविधा हो गई।

जून 1941 में जर्मनी ने रूस पर हमला कर दिया और इस प्रकार राय की भविष्यवाणी सत्य हुई कि तानाशाही विरोधी युद्ध रूस तक फैल जाएगा तथा रूस को भी लड़ाई में फंसाया जाएगा। इससे कांग्रेस का युद्ध के प्रति जो रवैया था उसमें कोई परिवर्तन नहीं आया। 1942 के आरंभ में युद्ध भारत तक पहुंच गया। जापान भी युद्ध में शामिल हो गया था और कुछ ही महीनों में दक्षिण-पूर्वी एशिया में फैले महान ब्रिटिश राज्य को संपूर्णतया समाप्त कर दिया। कलकत्ता व मद्रास में बस हड़तालें हुईं तथा पूरे देश में आतंक छा गया। भारत सरकार

के पास देश की रक्षा के लिए पर्याप्त योजनाएं व इंतजाम न थे। इसी संकटकालीन स्थिति में क्रिप्स मिशन कांग्रेस व मुस्लिम लीग का समर्थन प्राप्त करने भारत आया। मिशन नाकामयाब हुआ। कांग्रेस ने अपना सहयोग जारी रखा और अंततः अगस्त 1942 में अपना विरोध आंदोलन आरंभ कर दिया इस रुख से राय को गहरा सदमा पहुंचा।

वे दृढ़ता से 'भारत छोड़ो' आंदोलन के विरुद्ध खड़े हो गए। राय और उनके साथियों को इस आंदोलन की भारी कीमत चुकानी पड़ी। कइयों ने इसे ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध अंतिम लड़ाई समझा था। कई जगहों पर उन्हें भला बुरा कहा गया, उनका बहिष्कार किया गया, उन पर पत्थर फेंके गए और पीटा तक गया।

राय ने कहा, 'देश की रक्षा सभी लोगों का कर्तव्य व जिम्मेदारी है। विदेशी सरकार, यदि उसकी हार हो जाती है, देश को इसके भाग्य पर छोड़ सकती है, लेकिन लोग व लोगों के नेता ऐसा कठोर रवैया अख्तियार नहीं कर सकते। वे कलकत्ते में थे जब आतंक फैल रहा था। उन्होंने कई भाषण दिए और छापामार युद्ध तथा लोगों की रक्षा समितियों के बारे में सलाह-मशविरा किया। इससे लोग कुछ आश्वस्त हुए।

इस समय फैक्टरियों के मजदूर बमबारी तथा दुश्मनों द्वारा बदला लेने के डर से भाग रहे थे। यह आवश्यक था कि उन्हें उनके काम के स्थानों से प्रोपेगंडा तथा दूसरी ढाढ़स बंधाने वाली कार्यवाहियों द्वारा हटने न दिया जाता ताकि उत्पादन बिना रुकावट होता रहे। सरकार ने इस काम के लिए कुछ आर्थिक सहायता भी दी। यह सहायता इंटक (ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस) तथा भारतीय मजदूर संघ (इंडियन फैडरेशन आफ लेबर) (यह राय के नेतृत्व में बनी नई संस्था थी जो युद्ध प्रयत्नों को पूरा समर्थन दे रही थी) को दी गई। राय ने संघ की ओर से वह मदद स्वीकार कर ली जो सरकार दे रही थी। यह मदद 13,000 रुपये मासिक की थी। यह करीब दो वर्ष तक मिलती रही। सारा पैसा प्रचार कार्यों तथा आतंक को फैलने से रोकने के लिए मजदूर समितियां बनाने में खर्च किया गया। एकाउंटेंट जनरल की तसल्ली के लिए मोर्चे का पूरा-पूरा ब्योरा उनके सामने रखा गया। उनके तथा उनके सहयोगियों के खिलाफ जहर उगला जाने लगा।

राय के ऊपर इस घृणित निंदा तथा अनुचित आलोचना का कोई असर नहीं हुआ। उनके लिए लड़ाई के लिए काम करना तथा लड़ाई के प्रयत्नों में मदद देना उस सामाजिक क्रांति में मदद देना था जिसके लिए उन्होंने अपना जीवन अर्पित किया था। जितने भी देश युद्ध में शामिल थे सभी में सामाजिक क्रांति हो रही थी। निहित स्वार्थों का उन्मूलन कर दिया गया था तथा शोषित मजदूर वर्ग महत्वपूर्ण स्थान ले रहा था। उन्होंने स्वयं अपनी आंखों के सामने ग्रेट ब्रिटेन में ऐसा होते देखा था। उन्होंने आशा की थी कि भारत में भी वैसा ही होगा, यदि लोग युद्ध प्रयत्नों में ईमानदारी तथा संकल्प से सहयोग दें। उनका विचार था कि कांग्रेस

के युद्ध प्रयत्नों को प्रोत्साहित करने की जिम्मेदारी लेने पर, बदलती हुई स्थिति में वह शक्ति आ जाएगी जिसकी अपेक्षा थी। उनके लिए यह युद्ध अंतर्राष्ट्रीय युद्ध था। तानाशाही शक्तियों की हार से उन्हें यकीन था, हर देश में तानाशाही तत्वों की पराजय हो जाएगी। इसी विश्वास के साथ इस क्रांतिकारी ने युद्ध के वर्षों में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के साथ सहयोग दिया और जैसा उन्होंने पहले ही कह दिया था, वह शीघ्र ही जागृत व सतर्क ब्रिटिश जनतंत्र बनने वाला था। भारतीय स्वतंत्रता मिलने में कुछ वर्षों की और देर हुई क्योंकि उनकी राय नहीं मानी गई, किंतु जब यह अगस्त 1947 में मिली तो यह शांतिपूर्ण वैधानिक रूप से मिली, क्योंकि युद्ध के ही कारण साम्राज्यवाद के स्थान पर जनतंत्र आ गया था। राय ने पहले ही कह दिया था कि तानाशाही शक्तियों की पराजय के बाद साम्राज्यवाद भी समाप्त हो जाएगा। युद्ध के समाप्त होने पर दक्षिण पूर्वी एशिया में ब्रिटिश, फ्रांसीसी तथा डच साम्राज्यवाद का जो अंत हुआ उससे यह कथन सत्य सिद्ध हो जाता है। किसी भी राजनैतिक विश्लेषक के लिए अपनी की गई भविष्यवाणी का इससे अच्छा पुष्टिकरण नहीं हो सकता।

1942 के अंत में यह स्पष्ट हो गया कि युद्ध में तानाशाही शक्तियों की हार निश्चित है। जब यह स्पष्ट हो गया तब राय ने भारत में युद्धोपरांत होने वाले परिवर्तनों के विषय में सोचना आरंभ कर दिया। उन्हें तनिक भी संदेह नहीं था कि भारत स्वतंत्र हो जाएगा। उन्होंने इसे आवश्यक समझा कि स्वतंत्र भारत की आर्थिक व राजनैतिक व्यवस्था के बारे में विचार किया जाए। उन्होंने अपने पत्र स्वतंत्र भारत में आर्थिक रूपरेखा पर कई लेख लिखे जिनमें उन्होंने कैसा आर्थिक ढांचा बनाया जाए इस पर अपने विचार प्रकट किए। इन विचारों के आधार पर उनके तीन साथियों जी.डी.पारिख, वी.एम. तारकुंडे तथा बी.एफ. बनर्जी ने 1944 में एक ठोस दस वर्षीय योजना बनाई जिसका खर्च 15,000 करोड़ था। यह पीपुल्स प्लान (जन-योजना) के नाम से प्रचलित हुआ और बंबई प्लान के, जिसे उसी समय कुछ उद्योगपतियों ने बनाया था, विपरीत था। जन-योजना की, जो राय की ही योजना थी, मौलिक विशेषता थी, इसका खेती व समाज सेवाओं पर जोर तथा आर्थिक स्वावलंबन। यह दुख की बात है कि जब 1951 में देश में योजनाएं बनाने का समय आरंभ हुआ, सरकार तथा योजनाएं बनाने वाले लोगों ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया।

एक वर्ष बाद राय ने देश के राजनैतिक स्वरूप की रूपरेखा तैयार की। राजनैतिक पुनर्निमाण उतना ही आवश्यक था, जितना आर्थिक पुनर्निमाण। यह वास्तव में उनके पीपुल्स प्लान का आधार था। पीपुल्स प्लान (जन-योजना) के कुछ ही महीनों बाद ''स्वतंत्र भारत का संविधान'' की रूपरेखा तैयार की गई। इसको संविधान के मसौदे के रूप में जाना गया। वह उन अठारह सिद्धांतों पर आधारित है जिन्हें रेडिकल डेमोक्रेटिक पार्टी ने अपने प्रारंभिक अधिवेशन में स्वीकार किया था तब से इसको प्रचारित किया गया। इसे राय ने तैयार किया

था और इस पर अन्य लोगों द्वारा विचार विमर्श करने के लिए दिसंबर 1944 में प्रकाशित किया गया।

संविधान के मसौदे का संबंध केवल 'बुनियादी सवालों तथा विवादास्पद प्रश्नों' से है और तफसीलों को इसकी रूपरेखा स्वीकार करने के बाद भरे जाने के लिए छोड़ दिया गया है। इनमें एक जनतांत्रिक देश की परिकल्पना है। यह कुछ बुनियादी सामाजिक व राजनैतिक सिद्धांतों पर आधारित है। इसमें सामंतशाही राज्यों के समाप्त होने तथा उनको पड़ोसी प्रांतों में भाषा व सांस्कृतिक एकरूपता के आधार पर समाविष्ट करने के विषय में कहा गया है। इस विधान का निम्नलिखित आधार व नए कार्यक्रम की विशिष्टता अधिक महत्वपूर्ण है, ''इस रूपरेखा में सुगठित जनतंत्र को ही समस्त वैधानिक सत्ता का आधार कहा गया है—लोकप्रिय शासन चलाने का माध्यम। इतिहास का प्रमाण है कि बहुत छोटे व्यक्ति विशेष मताधिकारियों से जनतंत्र स्थापित नहीं होता है। एक विस्तृत देश में चुनाव के होने की कठिनाइयों को संगठित जनतंत्र समाप्त कर देगा। इससे राज्यों के वैधानिक तथा प्रशासकीय कार्यों को मिलाया जा सकेगा। इन दो कार्यों के अलग अलग होने से जनतंत्र पद्धति हमेशा दूषित हो जाती है और जन-शासन मात्र औपचारिक रह जाता है।''इसके तथा दूसरी नई विशिष्टताओं के समर्थन में ड्राफ्ट में बताया गया, ''अधिक से अधिक लोगों की यह राय बनती जा रही है कि संसार युद्ध के पहले जैसा नहीं हो सकता। राजनैतिक एवं आर्थिक दोनों ही रूप से इसका पुनर्निर्माण होना है और यदि सही अर्थों में पुनर्निर्माण होना है तो राजनैतिक अधिकारों व आर्थिक शक्ति में कुछ न कुछ संबंध अवश्य होना चाहिए। केवल ऐसे ही संबंध के आधार पर सच्चा जन-तंत्रीय विधान लागू हो सकता है।'' अंत में उन्होंने जोर देकर कहा, ''युद्ध की आग में तपकर एक नई दुनिया जन्म लेगी। यह ड्राफ्ट उसी भारत की एक तस्वीर पेश करता है।''[5]

युद्ध के शेष समय में पीपुल्स प्लान (जन-योजना) तथ ड्राफ्ट कांस्टीट्यूशन का काफी प्रोपेगंडा किया गया। इनमें रेडिकल ह्यूमनिज़्म की भी कुछ बातें सम्मिलित थीं जो राय के जीवन के अगले तथा अंतिम चरण में उनकी कार्यवाहियों की प्रेरणा शक्ति बनीं।

11

मानवतावाद की ओर

अपने जीवन के अगले व अंतिम चरण में राय साम्यवाद की ओर से दूर हट गए और 'रेडिकल ह्यूमनिज़्म' की ओर अग्रसर हुए। रेडिकल ह्यूमनिज़्म एक नया समष्टिगत जीवन दर्शन था जिसे उन्होंने साम्यवाद के दोषों व कमियों को समझने के बाद विकसित किया था।

युद्ध के दौरान तथा उसके बाद जो कुछ हुआ, उसने राय के सदा नई बातें खोजने वाले मस्तिष्क को बहुत अस्थिर कर दिया था। इसने उन्हें मजबूर कर दिया था कि वे कई साम्यवादी मतों व सिद्धांतों पर फिर से विचार करें। उन्होंने साम्यवाद को स्वतंत्रता के दर्शन के रूप में स्वीकारा था, किंतु वास्तविकता में उन्होंने पाया कि रूस में जहां इसकी विजय हुई थी, वहां अत्याचार व गुलामी का शासन स्थापित हो गया था। उन्हें इस बात से बड़ा धक्का लगा और गहरा दुख हुआ कि युद्ध के उपरांत स्टालिन प्रगतिवादी शक्तियों का नेतृत्व जो उनको करना चाहिए था, त्याग कर यूरोप पर सैनिक विजय प्राप्त करने की कोशिश कर रहे थे। राय ने तब ताजा सूचनाओं के आधार पर समझा कि कुछ तरीके और नीतियां जो रूस ने स्टालिन के नेतृत्व में युद्ध के समय अपनाई थीं और जिनका उन्होंने समर्थन किया था, वह एक सी आपत्तिजनक, संकीर्ण व अवसरवादी थीं और रूस एक राष्ट्रवादी देश के स्तर पर गिर चुका था। इन गलतियों और दुष्कार्यों के लिए किसी एक को दोषी ठहराने के बजाए राय ने इनका मूल कारण साम्यवाद के उन बुनियादी सिद्धांतों में खोजना शुरू किया जिनसे स्टालिन तथा अन्य साम्यवादी नेताओं के कार्य संचालित होते थे।

साम्यवाद की व्यक्ति के प्रति पूर्ण उपेक्षा तथा घृणा को ही राय ने इसकी वजह समझा। उन्होंने पाया कि व्यक्ति अंधी आर्थिक शक्तियों के हाथ में कठपुतली मात्र रह गया है तथा विस्तृत सामूहिक वर्ग की तुच्छ इकाई मात्र है। उसे स्वतंत्रता से और सत्ता से वंचित

कर दिया गया है। ऐसा ही पूंजीवाद में हुआ करता था और राय के अनुसार यही इस संकट का मूल कारण है जिससे संसार ग्रस्त है। संकट से उबरने का मार्ग न साम्यवाद दिखाता है न पूंजीवाद।

यूरोप में अपने लंबे अनुभव से राय संसदीय जनतंत्र के राजनीतिक क्षेत्र में तथा न्यूनतम हस्तेक्षप की नीति के आर्थिक क्षेत्र में खराबियां को देख चुके थे। साम्यवाद द्वारा बनाए गए सुधार, मजदूर वर्ग का अधिनायकवाद और केंद्रीय नियोजन सभी दोषपूर्ण थे। व्यक्ति को मुक्त करने के बजाए उन्होंने उसे उस सर्वशक्तिमान राज्य का गुलाम बना दिया जो उस पार्टी से शासित है जिस पर स्वयं एक तानाशाह पार्टी नेता का शासन है। इसलिए यह जरूरी था कि साम्यवाद के दायरे से आगे निकल कर ऐसी राजनीतिक व आर्थिक व्यवस्था के बारे में सोचा जाए जो मनुष्य समझते हुए उसे स्वतंत्रता व प्रगति प्रदान कर सके न कि उस राष्ट्र या वर्ग का सदस्य माने। राय ने संगठित जनतंत्र तथा सहकारी आर्थिक व्यवस्था को ही उस संकट का निवारक समझा जो पूरे विश्व में फैला हुआ था तथा जो संसार को युद्ध व विनाश की ओर खींच रहा था।

परंतु यह आवश्यक था कि संगठित जनतंत्र व सहकारी अर्थव्यवस्था का सैद्धांतिक आधार हो। यह उन्होंने अपनी नई विचारधारा 'रेडिकल ह्यूमनिज़्म' द्वारा किया। 1944 के बाद से वह इसी को विकसित करने में लग गए। 1946 में उन्होंने 'टवेन्टी टू थीसिस' लिखा जिसमें इस विचारधारा को स्पष्ट कथनों द्वारा रेखांकित किया गया। रेडिकल डेमोक्रेटिक पार्टी ने थीसिस पर कई महीनों विचार-विमर्श किया और अंततः दिसंबर 1946 में हुए बंबई अधिवेशन में इसे स्वीकार कर लिया। 1947 में इसे घोषणापत्र के रूप में विस्तृत किया गया जिसका शीर्षक था 'न्यू ह्यूमनिज़्म'। कुछ समय में हो सकता है यह घोषणापत्र क्रांतिकारी साहित्य में वही स्थान प्राप्त कर ले जो कार्ल मार्क्स के 1848 में छपे कम्युनिस्ट मैनिफैस्टौ का है।

स्वतंत्रता रेडिकल ह्यूमनिज़्म की प्रथम मान्यता है। यह वह सर्वश्रेष्ठ मान्यता है जिस पर अन्य मानवीय मूल्य आधारित हैं। राय ने अपनी स्वतंत्रता की धारणा इस प्रकार परिभाषित की है —

"जीवन का कार्य है जीवित रहना। हर जीव की प्रथम प्रेरणा उसके जीवित रहने का संघर्ष है। जीव विकास की लंबी अवधि में ऐसा ही होता रहा है और मनुष्य में यही स्वतंत्र रहने की सचेतन आकांक्षा बन जाती है—सबसे महान मानवीय मूल्य। मनुष्य का स्वतंत्रता के लिए कभी न समाप्त होने वाला संघर्ष वैसा ही है जैसा जानवरों में जीवित रहने का संघर्ष। जो कुछ भी मनुष्य ने किया है, उसका प्रत्येक कार्य, सांस्कृतिक प्रगति, वैज्ञानिक उपलब्धियां, कलात्मक कृतियां सभी एक ही इच्छा से प्रेरित हैं। मनुष्य सीमित है जब की विश्व असीम

है और अंततः उसका क्षेत्र सारा ही विश्व है। परिणामस्वरूप उसका स्वतंत्रता संघर्ष अनंत है। वह विश्व को कभी नहीं जीत सकता। इसलिए स्वतंत्रता की कामना ही इस मानवीय संसार में अनश्वर है। इसी इच्छा से वह ज्ञान प्राप्त करता है। वह वातावरण पर अपने ज्ञान से विजय प्राप्त करता है।"[1]

बुनियादी मानवतावाद जीवन के दर्शन रूप में समस्त मानव जीवन के अमूर्त विचारों से सामाजिक व राजनैतिक पुनर्निर्माण तक पूरे क्षेत्र से संबंधित है। जो अनुभव से परे है, उसमें इसका विश्वास नहीं है। इसके अनुसार मनुष्य प्रकृति का ही प्राणी है, वह भौतिक विश्व का अभिन्न अंग है। विश्व में नियमों से शासित व्यवस्था है। "इसलिए मनुष्य का अस्तित्व उसका होना उसके भाव, इच्छा, विचार सभी पहले से निश्चित हो जाते हैं। इसलिए मनुष्य मौलिक रूप से बुद्धि संपन्न है। मनुष्य के अंदर तर्कशक्ति होने से ही उसका सृष्टि से सामंजस्य है।"[2] मनुष्य नैतिक है क्योंकि वह बुद्धि संपन्न है। नैतिकता बुद्धि के साथ साथ बढ़ती है। इसलिए आदिमानव से सभ्य नागरिक होने का कारण बाहरी या अनुभवातीत शक्ति में नहीं खोजना चाहिए। मनुष्य ने समाज बनाया ताकि वह सफलता से जीवित रहने का संघर्ष कर सके। राय के अनुसार, "मानवीय प्रगति के लिए सामाजिक संघर्ष मनुष्य के विकास की पूरी प्रक्रिया और कुछ नहीं केवल ऊंचे स्तर पर जीवित रहने का संघर्ष है, यह संघर्ष यहां सहज बुद्धि व नैसर्गिक चुनाव से नहीं बल्कि बुद्धि, स्वेच्छा व तर्क से किया जाता है।"[3]

राय ने कहा, "रेडिकल ह्यूमनिज़्म ने आधुनिक सभ्यता के संस्थापकों की परंपरा को ही ग्रहण किया है—यह परंपरा है मनुष्य का ईश्वर व उसके एजेंटों द्वारा धरती पर किए गए अत्याचारों के प्रति विद्रोह।"[4] उन्होंने कहा यह एकदम नई बात नहीं है क्योंकि इसकी प्रेरणा रिनेसां के विचारकों से तथा अठारहवीं शताब्दी के मानवतावादी दार्शनिकों से मिली है। उन दिनों उनके लिए संभव नहीं था कि मनुष्य का प्रकृति से संबंध जान सकें। आधुनिक विज्ञान ने उस कठिनाई को दूर कर दिया है। मानवतावाद अब मूल तक पहुंच सकता है और इसीलिए राय ने अपने मानवतावाद को मूलभूत मानवतावाद कहा है।

रेडिकल ह्यूमनिज़्म तक पहुंचना सरल न था। राय को कई ऐसे विचार छोड़ने पड़े जिनको उन्होंने अपने जीवन के साम्यवादी चरण में सत्य माना था। यह यात्रा विचारों के क्षेत्र में एक साहसिक यात्रा थी। यहां कोई दिशा संकेत न थे और न ही कोई मार्गदर्शक। कई साम्यवादी जिनका भ्रम टूट चुका था साम्यवाद छोड़कर धर्म की ओर मुड़ गए, कई उदारतावाद या राष्ट्रवाद की ओर चले गए। वे रास्ते भी राय के लिए खुले हुए थे। परंतु पीछे जाने की अपेक्षा उन्होंने आगे जाना स्वीकार किया। वे साम्यवाद से भी बहुत आगे गए और मूलभूत मानवतावाद की खोज की। अपने आप से यह काम वह बहुत पहले कर सकते थे। उन्होंने जो आवश्यक था प्राप्त कर लिया था जैसे प्राकृतिक व सामाजिक विज्ञान का तथा

दर्शनशास्त्र का अध्ययन। पर उन्हें अपने साथियों, मित्रों तथा प्रशंसकों के साथ मिलकर काम करना था। वे कईयों को अपने साथ ले चलने में सफल हुए, केवल कुछ ही लोग अलग हो गए थे। इसके लिए लंबे विवाद व धैर्यपूर्ण तर्क-वितर्क की आवश्यकता थी। देहरादून में दो गर्मियों में हुए कैंपों में इसी पर चर्चा हुई। इसके अलावा तमाम निजी पत्रों में इस पर लिखा गया व आम सभाओं में भी इस पर भाषण दिए गए।

राय अब चाहते थे कि राजनीति से विश्राम लेकर देहरादून में बस जाएं और अपना पूरा समय पढ़ने व लिखने में लगाएं। परंतु राजनीति ने उन्हें नहीं छोड़ा। 1946 में रेडिकल डेमोक्रेटिक पार्टी ने तय किया कि प्रांतीय विधान सभाओं के लिए चुनाव लड़े जाएं। राय को चुनाव अभियान में मार्ग प्रदर्शन करने तथा संगठन करने में बड़ी भूमिका निभानी पड़ी। उसी वर्ष सत्ता को सौंपने के बारे में गंभीर बातचीत व विचार विमर्श हो रहे थे। राय चाहते थे सत्ता लोगों को सौंपी जाए न कि उन राजनैतिक दलों को जो उनका प्रतिनिधित्व कर रहे थे। वह ब्रिटिश सरकार को अपना दृष्टिकोण समझाने में सफल नहीं हुए न ही उन्हें जनता का आवश्यक संगठन बनाने में सफलता मिली। अगस्त 1947 में स्वतंत्रता मिलने के बाद तथा रेडिकल डेमोक्रेटिक पार्टी समाप्त होने के बाद उन्हें वह समय राजनीति की ओर से मुख मोड़ लेने के लिए बहुत उपयुक्त जान पड़ा। पर फिर भी वह राजनीति से पूरे तौर पर अलग नहीं हो पाए। समय समय पर राजनीतिक समस्याएं खड़ी होती थीं और उन्हें उनके बारे में अपना दृष्टिकोण बताना पड़ता था। वास्तव में पार्टी के समाप्त होने के बाद राजनीतिक समस्याओं के समाधानों के लिए उनके समय और शक्ति की मांग और भी बढ़ गई, क्योंकि उनकी सलाह स्वार्थरहित व निष्पक्ष थी। उन्होंने अपनी पत्रिका 'रेडिकल ह्यूमनिज़्म' तथा अंग्रेजी व अमेरिकन पत्रिकाओं में राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं पर बहुत अधिक लिखा। उनके लेखों की अपने देश में तथा विदेशों में बहुत प्रशंसा की गई।

उनके बाद राजनैतिक विचारधारा में दो बातें ऐसी हैं जो विशेष उल्लेखनीय हैं। एक है उनका बिना पार्टी की राजनीति पर जोर। राय ने कहा, "पार्टियां सत्ता के लिए छीना-झपटी करती हैं क्योंकि उनका विश्वास है कि बिना सत्ता प्राप्त किए कुछ भी नहीं हो सकता। सत्ता को हथियाना ही उनका एकमात्र ध्येय बन जाता है और उस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कोई भी साधन अपना लिए जाते हैं।" राय ने लिखा, "अनुभव से यह मालूम हो गया है कि कैसे राजनैतिक पिछड़ेपन व सामान्य अज्ञानता के वातावरण में इस व्यवस्था का दुरुपयोग किया जा सकता है, वैसे वे लोग जिनका चरित्र संदिग्ध है, सार्वजनिक विश्वास के स्थानों को केवल एक विशेष पार्टी में होने से प्राप्त कर लेते हैं। एक पार्टी प्राथमिकता व प्रसिद्धि उनको नहीं देती जिनमें बौद्धिक गुण हैं या नैतिक ईमानदारी है, बल्कि उनको देती है जो इसे सत्ता को कब्जे में करने में मदद देते हैं। नतीजा यह होता है कि पार्टियां उन व्यक्तियों की महत्वाकांक्षाएं पूरी

करने का कार्य करती हैं जो या तो सत्ता के प्यासे केवल सत्ता के लिए हैं या किसी आर्थिक लाभ के लिए।"[5]

इसके बाद उन्होंने सत्ता के केंद्रित होने के प्रश्न पर विचार किया और कैसे एक नई सामाजिक व्यवस्था बनाकर जिसमें राजनीतिक तथा आर्थिक दोनों सत्ताएं केंद्रित नहीं रहेंगी इससे बचा जा सकता है। अंत में उन्होंने लिखा, "जब तक राजनीति का उद्देश्य केवल सत्ता प्राप्त करना है, हमारा काम बिना पार्टी के नहीं चल सकता। पर यदि हम सत्ता को प्राप्त नहीं करना चाहते तो हम राजनीति बिना पार्टी के कर सकते हैं। किसी पार्टी के न होने पर सत्ता को कुछ हाथों में सौंपने का रिवाज खत्म हो जाएगा और सत्ता को कुछ हाथों में रहने की वैधानिक सहमति की प्रथा भी समाप्त हो जाएगी। हम एक ऐसा सद्भावपूर्ण समाज बना सकते हैं जो व्यक्ति विशेष की स्वतंत्रता नष्ट किए बिना स्वतंत्र समाज होगा, जहां समाज की स्वतंत्रता, कल्याण और समृद्धि सभी लोगों की व्यक्तिगत स्वतंत्रता, कल्याण और समृद्धि का कुल योग होगा।"[6]

दूसरी बात है क्रांति का नया तरीका जो राय ने बताया है। देहरादून में 1946 में लगे विचार शिविर में उन्होंने इसके बारे में बातचीत की। उन्होंने इसे 'सहमति अथवा अनुनय द्वारा क्रांति' का नाम दिया। क्रांति एक आवश्यकता है, उन्होंने बताया, परंतु आधुनिक राज्यों की जबरदस्त सैनिक शक्ति के कारण यह संभव नहीं है कि क्रांति को पुराने हथियारबंद विद्रोह द्वारा लाया जाए। इसलिए यह आवश्यक है कि कोई नया तरीका ढूंढ़ा जाए। उन्होंने जोर देकर कहा कि यह नया तरीका दूसरों के समझाने का है और यह प्रभावकारी भी होगा क्योंकि क्रांति मजदूर ही नहीं, बल्कि सभी लोग चाहते हैं। इसी पद्धति के आधार पर रूस की राजनीतिक व्यवहार संहिता निर्धारित की गई, एक ऐसी पद्धति जिसके अंतर्गत राहत प्राप्त करने और अधिकारों की रक्षा के लिए गांवों और कस्बों में जब समितियों का गठन किया जाता था, जो समय और विकेंद्रीकरण के साथ शक्ति के अंग बन जाते। इस शिविर में हुआ विचार विनिमय रेडिकल ह्यूमनिज़्म के विकास की आधारशिला बना। बातचीत के दौरान राय द्वारा किए गए योगदान का समस्त विवरण रिनेसां प्रकाशक, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित 'न्यू ओरियन्टेशन' नाम की पुस्तक में प्रस्तुत किया है।

रेडिकल ह्यूमनिज़्म से राय, गांधी और उनकी विचारधारा के निकट आ गए। दोनों मे कई समानताएं थीं। दोनों ने व्यक्ति को सभी सामाजिक विचारों व कार्यवाहियों का केंद्र माना। दोनों ही राजनैतिक व आर्थिक शक्ति के केंद्रीकरण के समर्थक थे और दोनों ने राजनीति को स्वच्छ करने के लिए बिना पार्टी के जनतंत्र का सुझाव दिया। वैसे बुनियादी तौर पर दोनों में कुछ फर्क भी था। राय भौतिकवादी और बुद्धिवादी थे, जबकि गांधी आध्यात्मिक थे और 'अंतरात्मा की आवाज' पर ज्यादा भरोसा करते थे। पर इससे उनके

कुछ व्यावहारिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए एक दूसरे के साथ मिलकर काम करने में बाधा नहीं पड़ी। इस प्रकार का एक सामान्य कार्यक्रम बाद के वर्षों में रेडिकल ह्यूमनिस्टों और गांधी जी के सर्वोदय अनुयायियों के बीच विकसित हुआ।

गांधी जी के बारे में राय के अपने विचार भी गांधी जी के जीवन के अंतिम वर्षों में बहुत बदल गए। राय जो हमेशा गांधी जी के आलोचक थे, उनके आजादी के बाद सत्ता से दूर हट जाने से तथा बंगाल में सांप्रदायिक समस्या सुलझाने अकेले जाने से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने यह महसूस किया कि गांधी जी एक बड़ी नैतिक शक्ति हैं। उनकी हत्या पर राय को बहुत धक्का लगा। यह समाचार उन्हें तब मिला जब वे कलकत्ते में एक सभा में भाषण दे रहे थे। वे भाषण जारी न रख सके और संक्षिप्त श्रद्धांजलि के बाद सभा विसर्जित कर दी। उसके बाद उन्होंने गांधी जी को 'स्वतंत्र भारत' के कालमों में भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की, लोगों को गांधी जी के संदेश की याद दिलाई कि लक्ष्य प्राप्ति के लिए साधनों का चुनना न्यायसंगत नहीं है।

इस समय राय ने कई पुस्तकें लिखीं व प्रकाशित कीं। उनमें से सबसे महत्वपूर्ण उनकी दो भागों की किताब 'रीजन, रोमांटिसिज्म एंड रिवोल्यूशन' है। पहला भाग फरवरी 1953 में छपा और दूसरा भाग उनकी मृत्यु के बाद छपा। इसमें राय के विचारों का निचोड़ है और 'रेडिकल ह्यूमनिज़्म' के चिंतन का सैद्धांतिक आधार है। राय की चीन पर किताब 'रिवोल्यूशन एंड काउंटर इन चाइना' का पहला अंग्रेजी संस्करण 1946 में छपा। यह पुस्तक 1930 में लिखी गई थी, पर कई कारणों से प्रकाशित नहीं की जा सकी। इसे कुछ अतिरिक्त अध्याय जोड़कर विवरण में नवीनतम सामग्री का समावेश करने के बाद प्रकाशित किया गया। 'रशियन रिवोल्यूशन' का प्रकाशन 1947 में हुआ। इसमें अधिकतर युद्ध के वर्षों के दौरान रूस पर लिखे गए लेख हैं। राय ने उस समय अपने संस्मरण भी लिखे। उन्हें इकट्ठा किया गया और पुस्तक के रूप में 'एम. एन.राय के संस्मरण' शीर्षक से 1964 में प्रकाशित किया गया। उनकी कई राजनैतिक पुस्तकें भी उन वर्षों में छपीं।

साहित्यिक कार्य में तथा रेडिकल ह्यूमनिज़्म आंदोलन को बढ़ाने के कार्य में बहुत ज्यादा लगे होने से राय को विश्राम की आवश्यकता थी। वे आराम करने जून 1952 में मसूरी गए। एलेन राय उनके साथ थीं। वह हर सुबह लंबी सैर को जाते थे। 11 जून को रोज की तरह वह सुबह घूमने निकले। वापस लौटते समय पहाड़ी रास्ते पर राय ठोकर खाकर गिर गए और पचास गज उतराई पर लुढ़कते गए। उनको गंभीर चोटें आईं और कई हफ्तों तक उन्हें बिस्तर पर रहना पड़ा। विशेषज्ञों की डाक्टरी चिकित्सा व पत्नी की देखभाल से वह ठीक हो गए। वे देहरादून वापस आ गए और अपना काम दुबारा आरंभ करने के बारे में सोचने लगे। परंतु अभी वे ठीक हो न पाए थे कि उनको प्रमस्तिष्कीय धनास्रता का दौरा पड़ा। साल

के अंत तक वे ठीक हो गए और रेडिकल ह्यूमनिज़्म के लिए लिखना शुरू कर दिया। मई 1953 तक वे इतना स्वस्थ हो गए कि चिकित्सा और भाषण के अनेक अनुरोधों को पूरा करने के लिए अमेरिका जाने की योजना बनाने लगे। पर अगस्त में उन्हें इसी बीमारी का दूसरा दौरा पड़ा। इससे भारत व विदेश में उनके साथियों,सहयोगियों व मित्रों को बहुत धक्का लगा। उनके मित्र जो यूरोप व अमेरिका में थे बड़ी उत्सुकता से उनके आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। कुछ उनके साम्यवादी आंदोलन के पुराने साथी थे। वे उनसे मिलने के लिए व अपने अनुभवों व विश्व की घटनाओं पर अपनी प्रतिक्रियाओं के बारे में एक-दूसरे की राय जानने के लिए उत्सुक थे। पर वैसा शायद नहीं होना था। जैसे जैसे दिन बीतते गए, उनकी बीमारी और भी गंभीर होती गई। अंत में 25 जनवरी 1954 को गणतंत्र दिवस के आरंभ होने के कुछ ही समय पहले उनकी मृत्यु हो गई।

राय की मृत्यु पर सभी ने, उनके भारत व विदेशों के मित्रों व आलोचकों ने गहरा शोक प्रकट किया। 13, मोहनी रोड पर असंख्य शोक संदेश पहुंचने लगे। अनेक सभाएं हुईं और अनेक श्रद्धांजलियां अर्पित की गईं। राय के न रहने से देश ने एक महान बुद्धिजीवी व आजादी का सच्चा सिपाही खो दिया। आजादी की तलाश जो उन्होंने अपने जीवन के आरंभ में शुरू की थी, अब उनकी किताबों से और उनके सच्चे साथियों से, जिन्हें वह छोड़ गए हैं जारी रहेगी।

टिप्पणी

अध्याय 1

1. अध्याय में दी हुई सूचना द *रैस्टलैस ब्राह्मिन*, लेखक समरेन राय , एलाईड पब्लिशर्स, बंबई (1970) पर आधारित है।
2. द *रैस्टलैस ब्राह्मिन*, पृ. 5
3. —वही— , प्राक्कथन
4. —वही—, पृ. 20
5. *एम. एन. राय : द मैन हू लुक्ड अहेड*, ए.के. हिंदी, पृ. 8
6. द *रैस्टलैस ब्राह्मिन*, पृ. 46
7. —वही— , पृ. 47
8. *एम.एन.राय के संस्मरण*, एलाईड पब्लिशर्स, नयी दिल्ली (1964), पृ. 3
9. द *रेस्टलैस ब्राह्मिन*, प्राक्कथन
10. *राजद्रोह कमेटी–1918–रिपोर्ट*, न्यू एज पब्लिशर्स, कलकत्ता, 12 (1973), पृ. 66

अध्याय 2

1. *संस्मरण*, पृ. 3
2. *राजद्रोह कमेटी रिपोर्ट*, पृ. 12
3. —वही—, पृ. 122
4. *संस्मरण*, पृ. 4
5. —वही—, पृ. 7
6. —वही—, पृ. 7
7. —वही—, पृ. 14

अध्याय 3

1. *पोलिटिकल ट्रबल इन इंडिया*, 1907-1917, जेम्स कैंपबेल केर, भारतीय संस्करण कलकत्ता (1973), पृ. 258
2. *संस्मरण*, पृ. 23
3. *कम्युनिज्म एंड नेशनलिज्म इन इंडिया*, जॉन पैट्रिक हैथकाक्स, प्रिंस्टन यूनिवर्सिटी प्रेस, प्रिंस्टन (1971), पृ. 8
4. *संस्मरण*, पृ. 43
5. —वही—, पृ. 199
6. —वही—, पृ. 217
7. —वही—, पृ. 219

अध्याय 4

1. सूचना *संस्मरणों* पर आधारित है।
2. दोनों थीसिस के मूलपाठ के लिए देखिए *डाक्यूमेंटस आफ द हिस्ट्री आफ द कम्युनिस्ट पार्टी आफ इंडिया*, भाग-1, जी. अधिकारी द्वारा संपादित, पृ.178 से 188 और 198 से 205
3. *चीन में मेरे अनुभव*, एम. एन. राय, रिनेसां पब्लिशिंग कं., बंबई (1938), पृ. 28
4. *संस्मरण*, पृ. 23

अध्याय 5

अध्याय का पहला भाग *संस्मरणों* पर आधारित है और बाद का भाग मुख्यतः सर सेसिल के , डायरेक्टर, इंटैलिजैंस ब्यूरो गवर्नमेंट आफ इंडिया की *कम्युनिज़्म इन इंडिया* पर आधारित है।

अध्याय 6

1. अध्याय में दी हुई सूचना राय की *चीन में मेरे अनुभव* तथा *रिवोल्यूशन एंड काउंटर रिवोल्यूशन इन चाइना* तथा राबर्ट सी. नार्थ एवं जेनिया जे यूडिन की *एम. एन.राय'ज मिशन टु चाइना* यूनिवर्सिटी आफ केलिफोर्निया प्रेस, बर्कले, यू. एस. ए. (1963) पर आधारित है।

2. *रिवोल्यूशन एंड काउंटर रिवोल्यूशन इन चाइना,* एम. एन. राय, रिनैसां पब्लिशर्स, कलकत्ता (1964), पृ. 517
3. *मेरे चीन में अनुभव,* पृ. 65,66
4. –वही–, पृ. 70,72

अध्याय 7

1. *कम्युनिज्म एंड नेशनलिज़्म इन इंडिया, एम. एन.राय एंड कमिन्टर्न पालिसी,* 1920-1939. जे पी. हैथकाक्स, प्रिंस्टन यूनिवर्सिटी प्रेस (1971), पृ. 86, 87
2. *हमारे मतभेद,* एम.एन.राय, सरस्वती लायब्रेरी, कलकत्ता (1938), पृ. 112, 113
3. –वही–, पृ. 130 से 135
4. हैथकाक्स, पृ. 130, 137
5. *कम्युनिज्म इन इंडिया,* ओवरस्ट्रीट एंड विंडमिलर, पृ. 140, 141
6. *हमारे मतभेद,* पृ. 25
7 –वही–,पृ. 27 से 29
8. –वही–, पृ. 42, 43

अध्याय 8

1. यह अध्याय ए.के. हिंदी द्वारा लिखित पुस्तक *एम. एन. राय : द मैन हू लुक्ड अहेड,* माडर्न पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद (1938) तथा एम.एन. राय द्वारा प्रकाशित साप्ताहिक पत्र *इंडिपेंडेंट इंडिया* में दी सूचना पर आधारित है।
2. *कम्युनिज्म इन इंडिया,* इंटैलिजेंस ब्यूरो पब्लिकेशन, पृ. 148
3. *ए हिस्ट्री आफ द सी. पी. आई.* भाग-1, 1917-1943, गवर्नमेंट आफ इंडिया, इंटैलिजेंस ब्यूरो, पृ. 69 से 71

अध्याय 9

1. *आन स्टेपिंग आउट आफ जेल,* बंबई में प्रकाशित पुस्तक
2. –वही–, पृ. 4 से 6
3. *हमारे मतभेद,* पृ. 150
4. –वही–, पृ. 146 से 152
5. *इंडिया एंड वार,* एम. एन. राय, रेडिकल डेमोक्रटिक पार्टी (1942), परिचय,पृ. 1
6. –वही–,पृ. 129

अध्याय 10

1. *इंडिया एंड वार*, पृ. 134
2. –वही–, परिचय, पृ. 30 से 32
3. –वही–, पृ. 240
4. –वही–,पृ. 332
5. *कांस्टीट्यूशन आफ इंडिया–ए ड्राफ्ट*, भूमिका

अध्याय 11

1. *न्यू ओरिएंटेशन*, एम. एन. राय, रिनेसां पब्लिशर्स, कलकत्ता (1946), पृ. 23
2. *रेडिकल ह्यूमनिज्म*, एम.एन.राय, ईस्टर्न इकोनोमिस्ट पैम्फलेट्स , नयी दिल्ली (1952), पृ. 16
3. *साइंस एंड फिलासफी*, एम.एन.राय, रिनेसां पब्लिशर्स, कलकत्ता (1947), पृ. 23
4. –वही–
5. *रेडिकल ह्यूमनिज़्म*, पृ. 31
6. –वही–, पृ. 44

काल-क्रमानुसार जीवन-परिचय

1887 मार्च	–	जन्म
1906	–	क्रांतिकारी आंदोलन में शामिल होना
1907 दिसंबर	–	चिंगरीपोटा रेलवे स्टेशन डकैती
1910 अप्रैल	–	नेत्रा डकैती
1910	–	हावड़ा कांस्प्रेसी केस में गिरफ्तार
1911-1913	–	क्रांतिकारी दलों के संगठन के लिए भारत में यात्राएं, जतिन मुकर्जी के नेतृत्व में ब्रिटिश सत्ता उलटने के षड्यंत्र में भाग लेना
1914 अगस्त	–	प्रथम विश्व युद्ध का प्रारंभ
1915 फरवरी	–	गार्डेन रीच डकैती
1915 अप्रैल	–	बटाविया को प्रस्थान
1915 जून	–	हथियारों का प्रबंध करके भारत वापसी
1915 अगस्त	–	हथियारों को लाने वाले जहाज के न पहुंचने पर दुबारा बटाविया प्रस्थान
1915	–	जतिन मुकर्जी की मृत्यु
1915 अगस्त से 1916 जून	–	हथियारों की खोज के लिए इंडोनेशिया,मलाया,चीन व जापान को प्रस्थान
1916 जून	–	बर्लिन होते हुए अमेरिका के लिए प्रस्थान
1916 जून, 14	–	सेन फ्रांसिस्को पहुंचना
1916 जून	–	स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी जाना व नाम बदलकर मानवेंद्रनाथ राय नाम ग्रहण करना

1916 अगस्त	—	न्यूयार्क पहुंचना
1917 जून	—	अमेरिका का युद्ध में शामिल होना
1917 जून	—	हिंदू जर्मन कांग्रेस के सदस्य होने से न्यूयार्क में गिरफ्तार होना
1917 जुलाई	—	मैक्सिको को पलायन
1918 दिसंबर	—	मैक्सिको की सोशलिस्ट पार्टी का सम्मेलन
1919 वसंत	—	बोरोडिन से भेंट
1919 अक्तूबर	—	मैक्सिको की समाजवादी पार्टी का साम्यवादी पार्टी में बदलना (रूस के बाहर बनी पहली साम्यवादी पार्टी)
1919 नवंबर	—	दूसरी कमिन्टर्न कांग्रेस में भाग लेने मैक्सिको से रवाना होना
1919 दिसंबर	—	बर्लिन पहुंचना
1920 अप्रैल	—	मास्को पहुंचना
1920 मई या जून	—	लेनिन से पहली भेंट
1920 जुलाई-अगस्त	—	दूसरी कमिन्टर्न कांग्रेस
1920 अगस्त	—	ताशकंद अभियान
1920 अक्तूबर	—	इंडिया हाउस व सैनिक स्कूल की स्थापना
1920 अक्तूबर, 17	—	भारतीय साम्यवादी पार्टी की ताशकंद में स्थापना
1921 अंत	—	*इंडिया इन ट्रांजिशन* का प्रकाशन, रूसी संस्करण; अंग्रेजी संस्करण 1922 के मध्य में
1922 मई	—	*वैनगार्ड* का प्रकाशन
1924	—	कानपुर कम्युनिस्ट कांस्प्रेसी केस
1927 जनवरी से अगस्त	—	चीन की उद्देश्यपूर्ती की यात्रा
1928 सितंबर	—	छठी कमिन्टर्न कांग्रेस
1929 मार्च	—	मेरठ कम्युनिस्ट कांस्प्रेसी केस
1929 दिसंबर	—	कमिन्टर्न से निष्कासन

1930 दिसंबर	–	गुप्त रूप से भारत वापसी
1931 मार्च	–	इंडियन नेशनल कांग्रेस के कराची अधिवेशन में भाग
1931जुलाई	–	सात महीनों के गुप्त कार्यकलाप के बाद बंबई में गिरफ्तारी
1931 अगस्त से दिसंबर	–	कानपुर में मुकदमा
1932 जनवरी	–	बारह वर्ष की देश निष्कासन की सजा; अपील के बाद घट कर छह साल की कठोर जेल
1933 जनवरी	–	हिटलर का सत्ता में आना
1936 नवंबर	–	देहरादून जेल से रिहाई
1936 दिसंबर	–	इंडियन नेशनल कांग्रेस के फैजपुर अधिवेशन में भाग लेना
1937 अप्रैल	–	*इंडिपेंडेंट इंडिया* का प्रकाशन आरंभ
1938 जून	–	'लीग आफ रेडिकल कांग्रेसमैन'की स्थापना
1939 सितंबर	–	दूसरे विश्व युद्ध का आरंभ
1940 अक्तूबर	–	युद्ध के प्रश्न पर इंडियन नेशनल कांग्रेस से इस्तीफा
1940 दिसंबर	–	रेडिकल डेमोक्रेटिक पार्टी की स्थापना
1944 अप्रैल	–	*पीपुल्स प्लान* का प्रकाशन
1945	–	*कांस्टीट्यूशन आफ इंडिया—ए ड्राफ्ट* का प्रकाशन
1948 दिसंबर	–	रेडिकल डेमोक्रेटिक पार्टी का चौथे सम्मेलन में विलयन
1952 जुलाई	–	मसूरी में दुर्घटना—परिणामस्वरूप लंबी बीमारी
1954 जनवरी	–	देहरादून में मृत्यु

महत्वपूर्ण पुस्तकें

1. रीजन, रोमान्टिसिज़्म एंड रिवोल्यूशन, खंड I, II
2. मेटीरियलिज़्म, एन आउटलाइन आफ हिस्ट्री आफ साइंटिफिक थाट
3. न्यू ओरिएंटेशन
4. न्यू ह्यूमनिज़्म
5. बियांड ह्यूमनिज़्म
6. रिवोल्यूशन एंड काउंटर-रिवोल्यूशन इन चाइना
7. माई एक्सपीरियन्सेज़ इन चाइना
8. रशियन रिवोल्यूशन
9. अवर डिफरेंसेज
10. इंडिया इन ट्रांजिशन
11. फ्यूचर आफ इंडियन पालिटिक्स
12. अवर प्राब्लम्स
13. लेटर्स टु कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी
14. इंडिया एंड वार
15. नेशनलिज़्म, एन एंटिक्वटड कल्ट
16. नेशनल गवर्नमेंट और पीपुल्स गवर्नमेंट
17. आई. एन. ए. एंड अगस्त रिवोल्यूशन
18. जवाहरलाल नेहरू
19. पालिटिक्स, पावर एंड पार्टीज
20. हिस्टोरिकल रोल आफ इस्लाम
21. फ्राम सेवेजरी टु सिविलाइजेशन
22. साइंस एंड सुपर्स्टिशन
23. कंस्टीट्यूशन आफ इंडिया—ए ड्राफ्ट
24. लेटर्स फ्राम जेल
25. संस्मरण
26. मैन आई मैट

अनुक्रमणिका

मुद्रक : ब्यूटी प्रिंट, 10/8020 मुलतानी ढांडा, पहाड़गंज, नई दिल्ली-55